परिचय

महाराज अशोक के पुत्र कुमार कुणाल किस प्रकार अपनी विमाता के कुचक्र से अन्धे किये गये, इसका विस्तृत वृत्त बौद्ध-ग्रन्थों में मिलता है। उसी मार्मिक आख्यान को लेकर श्रीयुत कैलाशनाथ भटनागर, एम० ए०, ने इस नाटक की रचना की है। यह नाटक विशेषतः छात्रों के लिए लिखा गया है, इससे इसमे आदर्श-प्रतिष्ठा का लक्ष्य प्रधान है। कुणाल के शील की जो झलक प्रथम अंक मे मिलती है वह क्रमशः अधिक स्पष्ट और उज्ज्वल होती हुई अन्त में परम उत्कर्ष पर पहुँच एक दिव्य ज्योति के रूप में जगमगा उठती है। ऐतिहासिक वृत्त को मार्मिकता और सजीवता प्रदान करने के लिए नाटकों में कल्पना का पूरा सहारा लेना पडता है। कथोपकथन तो सारा कल्पित होता ही है, कुछ पात्रों और घटनाओं की भी उद्भावना नाटककार को करनी पडती है। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि 'कुणाल' में जो संवाद दिये गये है तथा जिन कल्पित पात्रों और घटनाओं का समावेश किया गया है वे उस काल की सामाजिक परिस्थिति के अनुकूल है। अंत मे जो तिष्यरक्षिता का प्राणदंड से मुक्त होना दिखाया गया है वह भी, नाटककार के अनुसार, निराधार नहीं है।

भटनागरजी ने अपनी इस नाटक-रचना में सफलता प्राप्त की है, इसमें सन्देह नहीं।

दुर्गाकुण्ड, काशी
१५—३—२६

रामचन्द्र शुक्ल
(प्रोफेसर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

भूमिका

प्रस्तुत नाटक की सामग्री 'दिव्यावदान' के 'कुणालावदान' में ली गई है। सौतेली माता का सौतेले पुत्र के प्रति कितना कठोर व्यवहार हो सकता है, पुत्र उस कठोर व्यवहार को कैसे सहन करता है और परिणाम क्या निकलता है, यही इस नाटक का कथानक है।

सम्राट् अशोक की अग्रमहिषी (महारानी) असन्धिमित्रा का देहान्त ई० पू० २४० में हो गया। इनकी एक दासी तिष्यरक्षिता थी। सम्राट् और तिष्यरक्षिता दोनों परस्पर प्रेम-पाश में बँध गये। लगभग तीन वर्ष के अनन्तर (ई० पू० २३६ में) सम्राट् ने तिष्यरक्षिता को अपनी अग्रमहिषी बना लिया। इस समय रानी पद्मावती का पुत्र धर्मविवर्धन कुणाल युवराज था। अन्तःपुर में प्रवेश करते ही महारानी तिष्यरक्षिता का कुमार कुणाल से मनोमालिन्य हो गया। मनोमालिन्य का कारण वही था, जो 'पूर्ण भक्त' और 'रानी लूणा' का था। इस प्रकार के कथानक प्रायः प्रत्येक साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं। इस कथानक के शृंगार-रस-पूर्ण अंश को मैंने सर्वथा परिवर्तित कर दिया है। अतएव यह नाटक विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी है।

रानी लूणा पूर्ण भक्त को नगर से निर्वासित कराती है और उसके हाथ-पैर कटवाकर कुएँ में फेंकवा देने का आदेश देती

है तिष्यरक्षिता भी तक्षशिला में विद्रोह होने का समाचार पाकर कुमार कुणाल को वहाँ भिजवा देती है जिससे विद्रोहियों द्वारा उनका प्राणान्त हो जाय। कुमार की आयु इस समय लगभग २८ वर्ष की थी। इनका जन्म लगभग ई० पू० २६४ में हुआ था। सौभाग्यवश कुमार कुणाल विद्रोह शान्त कर लेते हैं और तिष्यरक्षिता का मनोरथ अधूरा रह जाता है। इसी समय सम्राट् अशोक पुरापादावर्त रोग से पीड़ित हो जाते हैं। कोई औषध लाभ नहीं पहुँचाता। वैद्य निरुपाय हैं। अग्रामात्य राधागुप्त कुमार कुणाल को तक्षशिला से बुलाने का विचार करते हैं। तिष्यरक्षिता की इच्छा नहीं थी कि कुमार बुलाये जायँ। वह सम्राट् की चिकित्सा का भार अपने ऊपर लेती है और अन्त में सम्राट् को नीरोग कर देती है। सम्राट् ने प्रसन्न होकर तिष्यरक्षिता को एक वर देना चाहा। उसने एक सप्ताह का राज्य माँगा। महाराज मान गये। तिष्यरक्षिता इन दिनों तक्षशिला के प्रधान अमात्य के नाम, सम्राट् की ओर से, एक पत्र भेजती है। उसमें कुमार कुणाल को राजद्रोही ठहराकर, नेत्रहीन करके, नगर से निर्वासित किये जाने का आदेश था। पत्र में लिखे हुए दण्ड की सूचना कुमार को मिलती है तो वे उसे सहने के लिए सहर्ष उद्यत हो जाते हैं, यद्यपि सब अमात्य आदि इसका विरोध करते हैं। कुमार का आदर्श अत्यन्त उच्च है। वे कहते हैं—"एक भिखारी जब भगवान के नाम पर कोई वस्तु माँगता है, तो दयालु लोग उसे वह वस्तु दे

देते हैं। मैं भगवद्भक्त हूँ और पितृभक्त भी। जब पिताजी के नाम पर कोई मेरे नेत्र लेना चाहता है, तो मुझे इसमे कुछ आपत्ति नही।" कुमार अपने नेत्र स्वय फोड़ लेते और नगर-त्याग कर देते हैं। पत्नी काञ्चनमाला उनके साथ जाती है। अन्तिम अङ्क मे जब रहस्य खुलता है, तब सम्राट् अशोक को तिष्यरक्षिता पर प्रचण्ड क्रोध आता है। वे उस राक्षसी को जन्तुगृह मे क्षुधार्त्त सिह के सामने डाल देने का दण्ड सुनाते हैं। इसकी सूचना पाकर कुमार कुणाल तिष्यरक्षिता को क्षमा करवाने का प्रयत्न करते हैं। वे कहते है—"पिताजी! मै यह अपयश सहन नही कर सकता कि पुत्र के कारण माता को प्राणदण्ड हुआ। आप यह समझे कि युद्ध मे इसके नेत्र जाते रहे। तीरो ने इसके नेत्रो को अपना लक्ष्य बना लिया।" जब सम्राट् किसी प्रकार क्षमा नहीं करते, तो कुमार स्वयं प्राण त्याग देने के लिए क्षुधार्त्त सिह के पिजडे की ओर लपकते हैं, परन्तु सम्राट् उन्हे पकड़ लेते हैं। इस पर कुमार कहते हैं—"पूज्य पिताजी! यदि आप माता को क्षमा न करेंगे तो मेरा भी यही अन्त हो जायगा। यदि आप मुझे जीवित रखना चाहते हैं, तो मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। माता तिष्यरक्षिता को मुक्त कर दीजिए।" विवश होकर सम्राट् को कुमार कुणाल की प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ती है। तिष्यरक्षिता मुक्त कर दी जाती है। वह अपनी करनी पर पश्चात्ताप करती है और भगवान् से प्रार्थना करती है कि कुमार कुणाल को नेत्र प्राप्त हो जायँ। इस समय अशोकाराम विहार के सङ्घस्थविर महात्मा यश आ

पहुँचते हैं। वे कहते हैं, 'भगवान बुद्ध ने मुझे दर्शन देकर कहा है कि कुमार की कुछ चिन्ता मत करो। उसका हित हमारे हाथ है।" तत्काल आकाश से पुष्पवृष्टि होती है और कुमार कुणाल पुष्पों को आँखों से लगा लेते हैं। इससे नेत्र ज्योति प्रकट हो जाती है। कुमार सब गुरुजनों के दर्शन पाकर प्रणाम करते और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। सम्राट् अशोक प्रसन्न होते हैं कि मेरा पुत्र इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया।

इस नाटक की कथा को मनोरञ्जक बनाने के लिए कई एक परिवर्तन किये गये हैं। सबसे प्रधान परिवर्तन है इसकी दुःखान्त कथा को सुखान्त बनाना। मूल कथा में सम्राट् अशोक तिष्यरक्षिता को जतुगृह में छोड़कर जला देते हैं तथा तक्षशिला के निवासियों को विशेष रूप से दण्ड देते हैं। "यावद् राज्ञाशोकेन तिष्यरक्षिता अमर्षितेन जतुगृहं प्रवेशयित्वा दग्धा तक्षशिलायाश्च पौरा प्रघातिता।" हुअन-सांग के अनुसार मुख्य-मुख्य मन्त्रियों में से कुछ को मृत्युदण्ड दिया गया, शेष को देश से निर्वासित कर दिया गया। वे अपने कुटुम्ब सहित खुतान (Khotan) में जाकर बस गये*।

कुमार कुणाल के चरित्र को उच्च बनाने के लिए मैंने यह आवश्यक समझा कि कुमार द्वारा तिष्यरक्षिता का अपराध क्षमा कराया जाय। ऐसा करने में ऐतिहासिक सामग्री मुझे सहायता

* युअन च्वांग—वाटर्स, भाग २ पृष्ठ २६३, एशेंट खोतन, सर स्टाइन कृत, पृष्ठ १६४।

देती है। 'दिव्यावदान' के 'कुणालावदान' (पृष्ठ ३९७) में ही लिखा है कि सम्राट् अशोक ने एक बार बोधिवृक्ष के लिए विशेष रत्न आदि से युक्त उपहार भेजा। उस समय सम्राट् अशोक की अग्रमहिषी तिष्यरक्षिता थी। उसने सोचा कि महाराज मुझपर प्रेम तो करते हैं किन्तु जो विशेष रत्न है वे बोधि-वृक्ष के लिए भेज देते हैं। उसने मातङ्गी से कहा—क्या तुम मेरी सौत 'बोधिवृक्ष' का नाश कर सकती हो ? उसने कहा—यत्न करूँगी। मातङ्गी ने मन्त्र-जप आदि से ऐसा किया कि वृक्ष सूखने लग गया। यह सूचना पाकर सम्राट् अशोक मूर्च्छित हो गये। चेत होने पर वे कहने लगे कि इस वृक्षराज के नष्ट हो जाने पर मेरे प्राण भी न बचेंगे। सम्राट् को शोकाकुल देखकर तिष्यरक्षिता ने कहा—देव ! बोधिवृक्ष न रहने पर आप मुझमें अधिक प्रेम करने लगेंगे। सम्राट् ने कहा—वह स्त्री नहीं, वरञ्च बोधिवृक्ष है जहाँ भगवान् को ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस पर तिष्यरक्षिता ने मातङ्गी से कहकर बोधिवृक्ष को पुनः सञ्जीवित करा दिया। यह सूचना पाकर सम्राट् अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने बोधिवृक्ष का महान सत्कार किया। 'महावंश' के अनुसार बोधिवृक्ष के सञ्जीवित हो जाने के एक वर्ष पश्चात् सम्राट् अशोक का देहान्त हो गया—

"In the 12th year from that period the beloved wife of that monarch, Asandhimitrā who had identified herself with the faith of Buddha died In the 4th year from

(her demise) the Rājā Dharmāśoka under the influence of carnal passions used an attendant of his (former wife) In the 3rd year from that date this malicious and vain creature who thought but of the charms of her own per on saying This king neglecting me lavishes his devotion exclusively on the bo tree in her ra e (attempted to) destroy the great bo with the poisoned fang of a toad In the 4th year from that occurrence this highly gifted monarch Dharmāśoka fulfilled the lot of mortality (p 134)

अर्थात् "उस समय से १ वें वर्ष उस महाराज की प्रिय पत्नी असन्धिमित्रा का जिसकी बौद्ध मत पर अनन्य भक्ति थी, देहान्त हो गया। (इसके देहान्त के) चौथे वर्ष राजा धर्माशोक ने विषयासक्त होकर अपनी (पहली स्त्री की) दासी को व्याह लिया। इसके तीसरे वर्ष इस दुष्टा और घमण्डी स्त्री ने, जो केवल अपनी शारीरिक शोभा की चिन्ता करती थी, सोचा 'यह राजा मेरी उपेक्षा करते और केवल बोधि वृक्ष पर अपार भक्ति रखते हैं।' इससे क्रुद्ध होकर उसने मण्डूक के विषैले दंष्ट्र से महावृक्ष के नष्ट करने का यत्न किया। इस घटना के चौथे वर्ष महागुणी महाराज धर्माशोक की मृत्यु हो गई।" (पृष्ठ १३४)

इससे यह प्रकट होता है कि प्रियदर्शी महाराज अशोक के अन्तकाल तक नहीं तो उनके देहान्त से एक वर्ष पूर्व तक अवश्य जीवित थी। उस समय उसने बोधिवृक्ष के सुस्थान को

यत्न किया था। यदि ऐसा है तो कुमार कुणाल ने उसका दण्ड क्षमा करवा दिया होगा। इस प्रकार यह दुःखान्त से सुखान्त नाटक बन गया। पूर्ण सुखान्त बनाने के लिए कुमार कुणाल के नेत्र प्रकट होना आवश्यक है। इसका आधार शिवि-जातक (जातक-संख्या ४९९) तथा कई ऐसी चमत्कारपूर्ण कथाएँ हैं। चीनी यात्री युअन-च्वाँग के मतानुसार कुणाल को दृष्टि पुनः प्राप्त हो गई थी*। परन्तु ऐतिहासिक सामग्री इसके विरुद्ध है।

मूलकथा मे कुमार कुणाल तक्षशिला त्यागकर सीधे पाटलिपुत्र की ओर चल पडते हैं। इसका तात्पर्य क्या यह है कि वे शीघ्र ही सम्राट् अशोक को तिष्यरक्षिता के अपराध की सूचना देकर दण्ड दिलाना चाहते थे ? परन्तु यह ठीक नहीं। जनश्रुति है कि कुमार कुणाल कुस्तान (Khotan) गये थे। यदि वे कुस्तान गये थे तो तक्षशिला-प्रान्त से निर्वासित होने पर ही गये होगे†। अतएव मैंने इस कथानक मे यह दिखाया है कि कुमार कुणाल देश-पर्यटन के लिए चले जाते हैं। कुस्तान आदि देखकर वे बौद्ध

---

* युअन-च्वाँग—वाटरज़, भाग १, पृष्ठ २४६।

† Ancient Khotan by Sir Aurel Stein p 159 "The first ancestor of the King was the eldest son of King Aśoka and resided in the kingdom of Takṣaśilā Having been exiled, he went to the north of the snowy mountains, where he led a normal life, seeking water and pastures for his flocks. Having arrived in this country [Khotan] he established there his residence --

धर्म सम्बन्धी स्थानों को देखने की लालसा से भ्रमण करते हु
मगध की ओर पहुँचते हैं और पाटलिपुत्र के मार्ग में पा
ठहर कर गुरुजनों के दर्शनार्थ रुक जाते हैं। वे चाहते हैं कि गु
जनों की चरण रज लेकर यात्रा आरम्भ करें। यहाँ रहस्य प्रग
हो जाता है।

ऐसे ही कुछ और परिवर्तन किये गये हैं। इस नाट
के लिखने में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है, यह तो पाठ
जान सकते हैं।

अन्त में एक बात का उल्लेख कर देना मैं आवश्यक समझ
हूँ। इस नाटक के कुछ पात्र तो ऐतिहासिक हैं और कु
काल्पनिक। पुरुष पात्रों में सम्राट् अशोक, कुमार कुणा
अग्रामात्य राधागुप्त और महात्मा यश तथा स्त्री पात्रों
तिष्यरक्षिता और काञ्चनमाला ऐतिहासिक हैं, शेष काल्पनिक
इस नाटक में अशोकाराम विहार का उल्लेख है। इसी का दूस
नाम कुक्कुटाराम विहार था।

लाहौर
३-९-१९३०

कैलाशनाथ भटनागर

मौर्य-वंशावली

चन्द्रगुप्त मौर्य
(ई० पू० ३२२-२६८)

बिन्दुसार अमित्रघात
(ई० पू० २६८-२७२)

अशोकवर्धन
(ई० पू० २७२-२३२)
की धर्मपत्नियाँ

- देवी (विदिशाश्रेष्ठी की कन्या)
  - महेन्द्र
  - सङ्घमित्रा का पति अग्निब्रह्मा
    - सुमन
- असन्धिमित्रा अग्रमहिषी (देहान्त २४० ई० पू०)
- चारुवाकी
  - तीवर
- पद्मावती
  - कुणाल धर्मविवर्धन (जन्म २६३ ई० पू०)
    - सम्प्रति* (काञ्चनमाला का पुत्र)
- तिष्यरक्षिता अग्रमहिषी (२३६ ई० पू०)

---

* परिशिष्टपर्वन् के पृष्ठ ६३ पर सम्प्रति की माता का नाम शरच्छ्री दिया है। परन्तु यह कथा प्रस्तुत कथा से भिन्न है। इसलिए यहाँ काञ्चनमाला नाम ही दिया है।

पुरुष-पात्र

अशोक		मौर्य-सम्राट्
कुमार कुणाल	...	सम्राट् अशोक की पहली रानी पद्मावती का पुत्र
राधागुप्त		अग्रामात्य
महात्मा यश	...	अशोकाराम विहार का सङ्घ-स्थविर
कीर्त्तिसेन	.	पाटलिपुत्र नगर का प्रसिद्ध वैद्यराज
आनन्दगुप्त, भवगुप्त, बुद्धगुप्त	...	अशोकाराम विहार के तीन भिक्षु
देवदत्त	...	अग्रामात्य का गुप्तचर
चन्द्रदत्त		एक अहीर
बलगुप्त	.	धनगुप्त सन्देशवाहक का भाई
इन्द्रगुप्त, रुद्रदत्त	...	दो नागरिक
चण्डसेन, रुद्रसेन	.	दो चाण्डाल

सेनापति तथा अन्य राजाधिकारी पुरुष, द्वारपाल, सैनिक सारथी आदि

स्त्री-पात्र

तिष्यरक्षिता	...	सम्राट् अशोक की अग्रमहिषी
आनन्दी	...	तिष्यरक्षिता की मुँहलगी दासी
काञ्चनमाला	..	कुमार कुणाल की स्त्री
कमला, विमला	..	काञ्चनमाला की दो सखियाँ

कुणाल

—:*:—

पहला अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र में अशोकाराम विहार

समय—सायंकाल के पूर्व

[कुछ भिक्षुओं का वार्तालाप]

पहला भिक्षु—इसकी ईर्ष्या की कुछ सीमा नहीं, द्वेष का कुछ अन्त नहीं। शोक है इस महारानी पर! यह मौर्यकुल के यश की उज्ज्वल चादर पर कलङ्क लगायेगी।

दूसरा भिक्षु—क्यों आनन्दगुप्त! कुछ और नई घटना हुई क्या?

आनन्दगुप्त—सो तो प्रतिदिन होती रहती है। आज सम्राट् ने बोधि-वृक्ष के लिए अमूल्य उपहार भेजा। तत्काल तिष्यरक्षिता के नेत्र तप्त शोणित से रक्त हो गये। उसके मुख ने अस्वीकृति की झलक प्रकट की। परन्तु सम्राट् से वह कुछ कह न सकी।

दूसरा भिक्षु—इस महारानी का चरित्र महारानी पद के प्रतिकूल है। बोधिवृक्ष से ईर्ष्या! बोधिवृक्ष से द्वेष! वह बोधि-

वृक्ष जिसकी छाया में तथागत को सुबुद्धि प्राप्त हुई, दिव्य ज्ञान का प्रकाश हुआ, वह बोधिवृक्ष हमारे आदर का पात्र है, ईर्ष्या का नहीं।

तीसरा भिक्षु—बुद्धगुप्त ! तुम भी आनन्दगुप्त के साथ हाँ में हाँ मिलाने लगे। तुम किसके चरित्र पर आशङ्का कर रहे हो ?

आनन्दगुप्त—तो यह कहो कि भवगुप्त महारानी तिष्यरक्षिता की स्तुति करता है।

बुद्धगुप्त—(सावेग) हाँ, कहो कहो, भवगुप्त ! तुम्हें क्या महारानी से उत्कोच मिलता है ? जान पड़ता है, महारानी ने तुम्हें अपने यश प्रसार के लिए नियुक्त किया है। धन्य हो ! और सब लोग तो ऐसी दुश्चरित्रा की बुराई करते नहीं थकते, केवल तुम्हीं आज दिखाई पड़े हो जो उसकी प्रशंसा करते हो।

भवगुप्त—बस थक गये ! चुप क्यों हो गये ? भले लोग ! मेरी बात समझ भी ली या व्यर्थ मुझे लगे कोसने ?

आनन्दगुप्त—तुम्हारे कथन का गूढ़ार्थ क्या होता ? इसका तात्पर्य स्पष्ट है।

भवगुप्त—नमो बुद्धाय ! नमो बुद्धाय !! मैं महारानी की प्रशंसा नहीं करता। मेरा तात्पर्य यह है कि तिष्यरक्षिता वास्तव में थी तो महारानी असन्धिमित्रा की दासी ही। वह अपनी प्रकृति के अनुकूल ही आचरण कर रही है। ओह ! महारानी असन्धिमित्रा का चरित्र कैसा महान् था, और इसका

चरित्र कैसा नीच ! महाराज न जाने किस कारण इसके मायाजाल मे फँस गये ।

आनन्दगुप्त—महाराज अब वृद्ध हो गये । कहाँ यह आयु और कहाँ यह रूपजाल का वन्दी जीवन ! अद्भुत है, भगवान् ! तेरी माया ! ऐसे धर्मात्मा पुण्यात्मा के लिए भी मार का यह प्रभाव !

बुद्धगुप्त—अरे रीझे थे—कुछ गुण भी तो देखते ! वही बात हुई—सूरत देख के बल गई, एड़ी देख के जल गई ।

आनन्दगुप्त—महारानी असन्धिमित्रा को प्रयाण किये चार वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु उनका नाम अब तक सब लोग सत्कार से लेते हैं । तिष्यरक्षिता को महारानी बने अभी थोड़ा समय हुआ है परन्तु इसके आचार-व्यवहार से सब अप्रसन्न हो रहे हैं ।

भवगुप्त—महारानी असन्धिमित्रा की तो यह बात थी कि महाराज अशोक सङ्घ आदि स्थानों पर जितना दान देते थे, उससे बढ़-चढ़कर दान महारानी देना चाहती थी । पर तिष्यरक्षिता ऐसी है कि महाराज अशोक जितना दान देते हैं, उतना ही वह क्रोध करती है । वह सोचती है कि क्या उपाय करूँ जिससे ये रत्न आदि और किसी को न मिलकर मुझे ही मिला करें ।

आनन्दगुप्त—मुझे तो और ही भय दिखाई देता है । यदि तिष्यरक्षिता के गर्भ से महाराज के कोई पुत्र उत्पन्न हुआ तो राजकुमार कुणाल पर अत्याचार होगा ।

बुद्धगुप्त—हाँ, यह तो स्पष्ट हो है।

भवगुप्त—हाँ, ठीक है। कुणाल का भविष्य अन्धकारमय हो जायगा।

बुद्धगुप्त—किन्तु कुणाल हैं अत्यन्त भद्र। यदि रानी पद्मावती जीवित होतीं तो इन्हें राज्य प्राप्त करने में सहायता मिल सकती थी। अब तिष्यरक्षिता है, वह बाधा डालेगी।

आनन्दगुप्त—यदि तिष्यरक्षिता के पुत्र हुआ तो वह अबोध शिशु इस विस्तृत राज्य की क्या रक्षा करेगा? राज्य के उत्तराधिकारी तो युवराज कुणाल हैं और भविष्य में उन्हें ही राजा होना चाहिए। वे शूर वीर हैं। उनसे शत्रुओं को आतङ्क रहेगा अन्यथा प्रत्येक क्षण हमें यवनों का भय घेरे रहेगा। वे अवसर पाते ही भारतवर्ष की स्वर्णभूमि पर टूट पड़ेंगे, और इसे पद दलित कर देंगे।

(एक शब्द सुनाई देता है)

जय जय बोधिसत्व भगवान्!

पाकर ज्ञान आपका अविकल हुआ जगत-कल्याण।

भवगुप्त—(शब्द सुनकर) ओह! बहुत विलम्ब हुआ। सायंकालीन प्रार्थना का समय हो गया।

बुद्धगुप्त—अब शीघ्र चलना चाहिए।

सब—(उठकर) हाँ, चलो, चलो। (प्रस्थान)

[पट

दूसरा दृश्य

स्थान—अशोकाराम के सघस्थविर का स्थान

समय—प्रातःकाल

[महाराज अशोक और सघस्थविर यश]

यश—देश-देशान्तर मे बौद्ध मत का डङ्का बज उठा है। सर्वत्र बुद्ध भगवान् का नाम देदीप्यमान हो रहा है। इसका श्रेय आपको है। बौद्ध मत के प्रति आपके दृढ़ अनुराग और अचल भक्ति का यह परिणाम है।

अशोक—महात्मन्! मैं इस कार्य का श्रेय भगवान् तथागत को ही देता हूँ। उन्होने मेरे हृदय मे इस कार्य के लिए उचित शक्ति का सञ्चार किया। मेरी यही मनोकामना है कि मैं बौद्ध मत के लिए अपना सर्वस्व त्याग दूँ। किन्तु .

यश—महाराज! इस सदिच्छा की पूर्त्ति के लिए आपने क्या नहीं किया? आपने सन्तान का मोह त्याग कर अपने पुत्र महेन्द्र और कुमारी सङ्घमित्रा को सिहलद्वीप भेज दिया, राजकुमारी चारुमती को भिक्षुणी बनाकर नेपाल भेज दिया, और स्वय सङ्घ मे सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की।...

अशोक—महात्मन्! इच्छा तो मेरी अब भी है, किन्तु आप महानुभावो का यह विचार भी उचित है कि राजसूत्र हाथ में रखकर मैं बौद्ध मत की अधिक सेवा कर सकता हूँ। अतएव ---- होकर मैंने राज्यत्याग नहीं किया।

यश—महाराज ! यह आपके प्रभाव का परिणाम है कि अब समस्त भारतभूमि में विहार दिखाई देने लगे हैं। केवल इस अशोकाराम विहार के लिए आपने कितना धन व्यय किया! तीन वर्ष के कठिन परिश्रम और श्री इन्द्रगुप्त स्थविर के कुशल निरीक्षण में यह विशाल विहार तैयार हुआ है।

अशोक—यह विहार अत्यन्त रमणीय बना है। जी चाहता है कि घण्टों निरन्तर इस विहार की रमणीयता निहारता रहूँ। एक ओर मानवी चतुर चितेरे की सुघराई है, दूसरी ओर नैसर्गिक शोभा की मनोहरता!

यश—मङ्गल के पञ्चवर्षीय उत्सव के लिए यही स्थान उत्तम था।

(गाना सुनाई देता है)

हे प्रभात मधु लेकर आया।

अम्बर में छाई है लाली,
हँसती वन की डाली डाली,
जग की शोभा बनी निराली,
प्राणों में आनंद जगाया।
हे प्रभात मधु लेकर आया।

माला बना रहा है माली,
बाट चढ़ियाँ शोभाशाली,
विहगों ने पी छवि की प्याली,
रवि अभिनंदन गान सुनाया।
हे प्रभात मधु लेकर आया।

अशोक—(गाना सुनकर) यह गाना तो कुमार कुणाल का है। भगवान् ने इसे कैसा अनुपम मधुर स्वर दिया है। कैसी आकर्षक शक्ति है!

यश—महाराज! यदि अप्रिय न लगे तो कुछ कहूँ?

अशोक—महायशस्वी सङ्घस्थविर! आपके वचन कटु क्योंकर लगेंगे? आप तो सदैव मेरा हित चाहते हैं। आप मेरे अहित की बात क्यों कहने लगे जो मुझे अप्रिय लगेगी?

यश—प्रजावत्सल! हित की बात कटु लगती है। अच्छा सुनिये। कुमार कुणाल अब युवा हैं। इन्हें राजकार्य की शिक्षा देना उचित है। इनका राजनीति में निपुण होना आवश्यक है।

अशोक—आपकी क्या आज्ञा है?

यश—अच्छा हो, यदि कुमार को किसी प्रदेश का उपराज बना दिया जाय।

अशोक—मैं आपके विचार में सर्वथा सहमत हूँ। आपने......

[कुमार का प्रवेश और यथोचित दण्डवत् आदि करना]

अशोक—पुत्र कुणाल! कहो, कहाँ थे?

कुमार—पिताजी! यहीं विहार के रम्य उद्यान की शोभा देख रहा था। प्रकृति की सुन्दर रचना से मुग्ध हुआ यहीं घूम रहा था!

अशोक—कुमार! अब युवा हो। मैं वृद्ध हूँ। मेरी इच्छा है कि तुम अब राजकार्य में मेरा हाथ बँटाओ।

यश—हाँ कुमार ! मैं भी यही चाहता हूँ। मौर्यकुल-राजकुमार उचित शिक्षा ग्रहण करे, राजकार्य में अभ्यास प्राप्त करे।

कुमार—महाराज ! महात्मा सङ्कल्पविरागी ! आप जो आज्ञा करें मैं उसे पूर्ण करने के लिए उद्यत हूँ। मुझे आपका संकेत-मात्र पर्याप्त है।

यश—ठीक है, कुमार ! ठीक है। तुम जैसी सन्तान के लिए सकल ही पयाप्त है। (स्वगत) प्रतीत होता है कि कुमार के नेत्र शीघ्र नष्ट हो जायँगे। (प्रकट) कुमार ! एक बात का स्मरण रखना।

कुमार—आज्ञा कीजिए।

यश—कुमार ! नेत्र अनित्य हैं, चञ्चल हैं, सहस्रों दुःखों के वासस्थान हैं। सदा इनकी परीक्षा करते रहना चाहिए। जहाँ अनेक पुरुष अनुरक्त होते हैं, वहाँ अन्य जन अहित करने का यत्न करते हैं।

कुमार—आपकी आज्ञा का ध्यान रक्खूँगा। (अशोक की ओर देखकर) पिताजी ! आपकी कुछ और आज्ञा हो तो

अशोक—प्रिय कुमार ! तुम मेरे आज्ञाकारी पुत्र हो। तुम्हारे लिए आज्ञा की कुछ आवश्यकता नहीं संकेत ही पर्याप्त है।

कुमार—पूज्यपाद ! आपके सङ्केत का भी उल्लङ्घन करना मेरे लिए सर्वथा असम्भव है। आपके सङ्केत पर मैं अपने प्राणों पर भी खेल सकता हूँ।

अशोक—मेरे प्रिय कुणाल ! (आलिङ्गन करते हैं) मुझे तुमसे ऐसी ही आशा है। [पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

स्थान—राजप्रासाद में कुमार कुणाल का भवन

[कुमार कुणाल और काञ्चनमाला]

काञ्चनमाला—नाथ ! बोधिवृक्ष को देखकर हृदय की अद्भुत दशा हो जाती है। महात्मा तथागत में मन लीन हो जाता है। उस समय की घटनाओं का स्मरण हो आता है जिस समय भगवान् बुद्ध तपस्या में तत्पर थे और मार आदि बाधाकारिणी शक्तियाँ उन्हें पथच्युत करने का प्रयत्न कर रही थीं। नमो बुद्धाय।

कुणाल—नमो बुद्धाय। मार के प्रभाव से अविचलित शाक्य-मुनि का उसे आह्वान करना कैसा सुन्दर है!—"पर्वत-राज मेरु यद्यपि स्थानच्युत हो जाय, समस्त संसार लुप्त हो जाय, इन्द्र-सहित सब तारागण आकाश से भूमि पर गिर पड़ें, सब जीवों का एकमत हो जाय, महासागर सूख जाय, तथापि मुझे इस वृक्षराज के तल से कोई हटा नहीं सकता।"

काञ्चनमाला—इतने उच्च आदर्श के साथ उच्च ज्ञान की प्राप्ति उचित थी। धन्य है वह स्थान, वह पीपल का वृक्ष, जहाँ तथागत को बोध हुआ। धन्य है बोधिवृक्ष! सब जिसे शीश झुकाते हैं।

कुणाल—इसी कारण बोधिवृक्ष को देखकर हमारा हृदय सुगत की ओर आकृष्ट हो जाता है, मन में हर्ष और उल्लास की उमङ्गें हिलोरें लेने लगती हैं। सुगत के स्मृतिचिह्न वृक्ष के सामने हमारा सिर स्वयमेव झुक जाता है।

काञ्चनमाला—इस वृक्ष पर सब कोई प्रेम करते हैं, श्रद्धा रखते हैं। महाराज तो इसके अनन्य भक्त हैं। केवल माता तिष्यरक्षिता ही इससे ईर्ष्या करती हैं। इनका स्वभाव विचित्र है, दुर्ज्ञेय है। सुना है, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की धार्मिक प्रवृत्ति प्रबल होती है। किन्तु यहाँ यह विचार प्रतिकूल दिखाई देता है।

कुणाल—प्रिये! इस रहस्य को हमारी स्थूल बुद्धि क्या समझे? इतना तो स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति भिन्न है, स्वभाव पृथक् है, मति-गति निराली है। अतएव तुम यही समझो कि माता तिष्यरक्षिता का रङ्ग-ढङ्ग महाराज या हम सबसे निराला है।

काञ्चनमाला—भला ऐसा निराला क्या जिससे नाम पर बट्टा लगे, कुल पर कलङ्क लगे।

कुणाल—माता असन्धिमित्रा के सामने तो ये अच्छी थीं।

काञ्चनमाला—'अच्छी थीं' यह कैसे? तब इनकी परीक्षा लेने की आवश्यकता किसे थी?

कुणाल—यद्यपि तब अच्छा न रहा होगा किन्तु अब ये महारानी हैं। इसी कारण इन्हें अपना व्यवहार बदलना चाहिए।

सुना है, प्रजाजन इनके सम्बन्ध मे मनमानी हाँकते है। ऐसी बातो पर मेरा हृदय मुरझा जाता है, मातृगर्व पर तुषार-पात हो जाता है। मैने मातृ-सुख नही देखा था। माता पद्मावती मुझे प्रसवकाल मे ही छोडकर परलोक सिधार गईं। माता असन्धिमित्रा ने भी वियोग दिखाया। इन्हे अब माता मानता हूँ, परन्तु लज्जा उठानी पड़ती है।

काञ्चनमाला—(पद्मावती की मूर्त्ति को देखकर) माताजी ! यदि आप जीवित होतीं, तो प्रजा मे आपके सद्‌गुणो का वर्णन सुनकर इन्हे कितना हर्ष होता !

कुणाल—(माता पद्मावती की मूर्ति देखकर) माता ! मेरे उत्पन्न होते ही आप मुझे त्यागकर चल दी। आपने सन्तान-सुख न देखा, मैने जन्मदात्री माता का सुख.. (सजल नेत्रों से मूर्ति के गले में एक माला डाल देते हैं।)

काञ्चनमाला—(कुमार के सजल नेन देखकर) नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। शोक तो है महाराज की बुद्धि पर जिन्होने इस अवस्था मे यह बवाल लगा लिया।

कुणाल—महाराज बडे हैं, हमारे पूज्य हैं। उनकी कृतियों की आलोचना करना हमारी सीमा से बाहर है। अब यह प्रसङ्ग छोडो। निन्दा करना पाप है। मनोविनोद का प्रसङ्ग छेड़ो। एक सुन्दर गीत सुनाकर मन का उद्वेग शान्त करो।

काञ्चनमाला—आप ही न जरा वीणा बजाकर हर्ष की बाढ़ ला दे। आपकी वीणा में वह शक्ति है जो भरत मुनि

का सानी रखती है। आपका वाणा सुनकर मन मुग्ध हो अचेतन-सा हो जाता है।

कुणाल—वाह! तो अचेतनावस्था अच्छी है या चेतनावस्था?

काञ्चनमाला—प्रेमस्रोत की आनन्द-तरङ्गों से उत्पन्न अचेतनावस्था भी भला है। साँप जैसा दुष्ट जीव भी वाणा के वशीभूत हो ऐसा हो जाता है, फिर विशेषतया एक अनुरक्त व्यक्ति क्योंकर अचेतन न हो?

कुणाल—अच्छा, अब समझा। तुम्हारा अभिप्राय यह है कि तुम्हारे गीत से आकृष्ट हुआ प्राणी सुध-बुध खो बैठता है। अपने गान की प्रशंसा अपने आप ही!

काञ्चनमाला—(लजाकर) उँह! तो मैं नहीं गाती। आप मुझे बनाते हैं।

कुणाल—(हाथ पकड़कर) ऐसा मत करो। रुष्ट हो गई!

काञ्चनमाला—मैं जाती हूँ।

कुणाल—(रोककर) गीत सुनाये बिना जाना कठिन है।

काञ्चनमाला—तो आप भी एक बात मानें।

कुणाल—कहो।

काञ्चनमाला—आप साथ वाणा बजायें तो गाऊँ।

कुणाल—(हँसकर) यह कृत्रिम रोष का अभिप्राय मैं पहले ही समझ गया था।

काञ्चनमाला—इच्छा न हो तो जाने दीजिए। (जाना चाहती है)

कुणाल—अच्छा, तुम्हारी इच्छा ही सही।

काञ्चनमाला—(हँसकर वीणा पकड़ाती है) लीजिए, आरम्भ कीजिए।

(कुणाल वीणा बजाते हैं, काञ्चनमाला गाती है)

जगत मे झूठा है अभिमान।

राजा रानी राव रङ्क सब, चार दिवस महमान॥

जन अधिकार प्राप्त करने को सहते कष्ट महान।

करते धरा रक्त से रञ्जित खोते प्रियतम प्राण॥

पर सब पड़ा यहीं रह जाता तन, धन, धरणी, मान।

अन्त-समय तो कर फैलाकर होते सभी समान॥

बोधि-भाव ही केवल जग में करता शान्ति प्रदान।

वही अमर है, अभय-रूप है, है आनन्द-निधान॥

[पट-परिवर्त्तन

चौथा दृश्य

स्थान—महाराज अशोक का राजप्रासाद

[महाराज अशोक और तिष्यरक्षिता]

तिष्यरक्षिता—प्राणाधार ! एक बात पूछूँ ?

अशोक—हाँ, पूछने के लिए आज्ञा का क्या आवश्यकता ?

तिष्यरक्षिता—महाराज ! बात ही ऐसी है। इसलिए पहले पूछ लेती हूँ कि आप उत्तर देंगे या नहीं।

अशोक—तिष्य ! मैंने तुम्हारी कोई बात टाली है जो इस समय शङ्का करती हो ?

तिष्यरक्षिता—अच्छा बताइए, मैं आपको अधिक प्रिय हूँ या पहली रानी असन्धिमित्रा।

(अशोक मौन रह जाते हैं)

तिष्यरक्षिता—महाराज ! चुप क्यों हैं ? उत्तर दीजिए।

अशोक—प्रिये ! उत्तर क्या दूँ ? बात ही ऐसी है।

तिष्यरक्षिता—तो आप अपने वचन से फिर रहे हैं।

अशोक—तिष्ये ! आज तुम्हें यह क्या सूझा ?

तिष्यरक्षिता—अब टाल मटोल मत कीजिए। अच्छा, जाने दीजिए। मौन रहने में उत्तर स्वयं स्पष्ट है।

अशोक—(विस्मय से) क्या ?

तिष्यरक्षिता—यही कि मैं नहीं, रानी

अशोक—(बड़े असमञ्जस में) प्रिये ! इस बात का उत्तर मैंने कभी सोचा न था। प्रश्न ऐसा जटिल है कि सहसा उत्तर देते नही बनता।

तिष्यरक्षिता—हाँ, मै समझ गई, मेरा अनुमान असङ्गत नही है।

अशोक—(सोचते हैं) क्या कहे ? कुछ कहना उचित है। (प्रकट) प्रिय तो महारानी असन्धिमित्रा भी थी परन्तु वे मुझे अपनी ओर इतना आकृष्ट नहीं कर सकी थीं जितना तुम।

तिष्यरक्षिता—वाह ! इतना सोच-विचारकर उत्तर दिया और तब भी वही बात कही जो मैंने पहले समझ ली थी।

अशोक—यह कैसे ? मैने तो....

तिष्यरक्षिता—महाराज ! ज़रा सुनिए। आपके कथन का अर्थ यह है कि जैसे मै आपको प्रिय हूँ वैसे रानी असन्धिमित्रा भी थी परन्तु वे आपको अपनी ओर अधिक खींच नही सकी और मैने खींच लिया है। इसमे विशेषता तो मेरी हुई। आपने तो दोनो को एक समान माना।

अशोक—इतनी क्यों बनती हो ? स्वय कह रही हो कि इसमें विशेषता मेरी हुई और फिर भी वाद-विवाद मे तत्पर हो। मैने भी तो विशेषता तुम्ही मे बताई थी।

तिष्यरक्षिता—(मुसकराकर) आप मेरी विशेषता से मुझे प्रसन्न नही कर सकते। यदि आप मुझे अधिक प्रिय बताते तो मुझे सन्तोष होता।

अशोक—महारानी तिष्ये ! क्या इसके कहने की आवश्यकता है ? सबका विरोध होने पर भी तुम्हें महारानी बनाना क्या प्रकट करता है ? केवल तुम्हारे लिए मेरे प्रेम की पराकाष्ठा !

तिष्यरक्षिता—(प्रसन्न होकर) मेरी यही प्रार्थना है कि आपका प्रेम मेरे लिए अटूट हो, अक्षुण्ण हो।

अशोक—महारानी ! ऐसा ही होगा। इसकी क्या चिन्ता !

तिष्यरक्षिता—चिन्ता भला क्यों होती ? केवल यही विचार उठता है कि कुमार कुणाल के कहने पर आप कभी मुझ पर रुष्ट न हो जायँ, आपका प्रेम-स्रोत मेरी ओर से सूख न जाय।

अशोक—तिष्ये ! तुम कुमार का कुछ भय मत करो। वह अत्यन्त सहनशील और विनीत है। वह कभी कोई ऐसी बात नहीं करेगा, जिससे तुम्हें लेशमात्र दुःख हो या क्लेश की सम्भावना हो।

तिष्यरक्षिता—मैंने सुना है कि कुमार मन ही मन मुझसे जलते हैं, द्वेष करते हैं।

अशोक—प्रिये ! तुम इन बातों पर विश्वास मत करो। लोग व्यर्थ बहकाया करते हैं। कुमार इस प्रकृति का नहीं है कि पिता के कार्य पर अस्वीकृति प्रकट करे।

तिष्यरक्षिता—महाराज ! मुझे विश्वस्त सूत्र से विदित हुआ है कि कुमार को अपने युवराज पद के छिन जाने का भय उपस्थित हो गया है। अतएव वह मेरे विरुद्ध है।

अशोक—तिष्ये ! आज तुम्हें क्या हो गया है ? मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि कुमार कुणाल वैसा नहीं है, जैसा तुमने समझा है। वह माता-पिता का आज्ञाकारी है। उससे तुम तनिक भी मत डरो, निश्चिन्त रहो।

तिष्यरक्षिता—(स्वगत) अभी दाल नहीं गलती। फिर कभी अवसर देखकर दाँव लगाऊँगी। (प्रकट) हाँ, ठीक है, महाराज की कृपा-दृष्टि होने पर भय कैसा ?

अशोक—रानी ! तुम कुमार के स्वभाव से अभी परिचित नहीं हुई हो। इसी लिए तुम्हें ऐसी आशङ्का हुई है। तुम उसके चरित्र की जाँच करोगी तो उसे गुण-धाम पाओगी।

तिष्यरक्षिता—(स्वगत) देखो, यह कुमार का कितना आदर करते हैं। देखूँगी। (प्रकट) भगवान् करे, आपका अनुमान सत्य हो।

[पट-परिवर्तन

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—राजप्रासाद में आनन्दवर्धन उद्यान

समय—प्रातःकाल

[हाथ में वीणा लिये हुए कुणाल का प्रवेश]

कुणाल—(टहलते हुए) वाह ! वीणा भी कैसी अनुपम वस्तु है। इसके तारों को तनिक हिला दो तो बोलने लग जाता है। मर्त्यलोक के शब्द को आकाश और पाताल में पहुँचा देती है। हृदय रूपी तन्त्री के स्वरों को मुक्त कर आनन्ददायिनी वीणा रूपी तन्त्री से जोड़ देती है। हृदय को वशीभूत कर वीणा अपना प्रभुत्व दिखाती है। इस रमणीय काल में यह रम्य उद्यान कोयल के कुहू कुहू शब्द से कैसा गुञ्जायमान हो रहा है। पक्षियों का कलरव कितना कर्ण मधुर है ! पक्षियों का रंग रूप मनोमोहक है। अच्छा, इस वीणा की ध्वनि से मैं इन पक्षियों को अभयदान देकर यहीं मुग्ध किये रखता हूँ।

(गाता है)

अलौकिक शोभा है उपवन की।

भाँति भाँति के सुमन खिले हैं, सुरभित दिशा भुवन की।

कर मकरन्द पान गूँजे अलि, कोयल मोहक मन की॥ अलौ०॥

पागल होते भ्रमर देखकर शोभा, अरुण गगन की।
दिशा-दिशा में छाई है, ध्वनि विहगों के कूजन की॥ अलौ०॥
हुलसा हृदय, उदासी भागी क्षण भर में आनन की।
विदित हुई नलिनी को ज्यों ही आगति फिर पूषण की॥ अलौ०॥
विस्मय होता देख प्रीति को अतिशय लता पवन की।
जब आता है पवन पास तब झुकती गर्दन इनकी॥ अलौ०॥

[तिष्यरक्षिता का प्रवेश]

तिष्यरक्षिता—(गाने का शब्द सुनकर) मेरा हृदय इस गीत की ओर क्यों आकृष्ट हो रहा है? कैसी सम्मोहिनी तान है! देखूँ, यह किसका मधुर स्वर है। (बढ़ती है, कुणाल को देखकर) कुणाल की वीणा में कैसा मधुर रस है! आज तक मैं इस मधुर सुधामय गीत से वञ्चित थी। (कुणाल की ओर टकटकी लगाकर) कुणाल स्वयं कितने मधुर स्वभाव तथा सौम्य आकृति का युवक है! चलूँ, ज़रा पास जाकर वीणा सुनूँ। (आगे बढ़ती है)

[कुणाल का गाना सुनाई देता है]

लता-कुञ्ज की प्रकृति-कृती भी, है आकर्षक जन की।
भाव भरे खेलों में मानो, ईश्वर-सृष्टि-सृजन की।
बतलाकर अति अद्भुत महिमा, भरती चाह लगन की॥ अलौ०॥

तिष्यरक्षिता—(पास पहुँचकर प्रत्यक्ष) कुणाल, धन्य है तुम्हारी वीणा और धन्य हो तुम!

कुणाल—(तिष्यरक्षिता को देखकर) प्रणाम।

तिष्यरक्षिता—चिरञ्जीव रहो कुणाल ! तुम्हारी वाणी में विचित्र शक्ति है। इसका मधुर रस पान कर मन सम्मोहित हो जाता है। कानों में सुधारस बरसने लगता है।

कुणाल—आप तो अधिक प्रशंसा करती हैं। वीणा बजाकर मैं एक-आध क्षण अपना मन बहला लेता हूँ।

तिष्यरक्षिता—नहीं, अपना मन ही नहीं बहलाते, वरन औरों का मन भी मथ डालते हो। वीणा का शब्द सुनाकर पशु को भी अपनी मुट्ठी में कर लेते हो।

कुणाल—यह सब गुरुजनों की कृपा का फल है। मैं आपको धन्यवाद करता हूँ जो आप इस प्रकार मेरी प्रशंसा करती हैं।

तिष्यरक्षिता—कुणाल ! यह स्तुति या प्रशंसा नहीं, स्वयं अनुभव की गई बात है।

कुणाल—हाँ, क्यों न हो। माता और पुत्र का सम्बन्ध ही ऐसा है। पुत्र का छोटा सा भी अच्छा काम माता को बहुत अच्छा जान पड़ता है।

तिष्यरक्षिता—'माता' ! वाह कुणाल ! मैं खूब जानती हूँ कि मेरे प्रति तुम्हारे कैसे भाव हैं ! तुम मुझे माता-तुल्य मानते हो ?

कुणाल—क्यों नहीं मानता ? जब आप अब महाराज अशोक की महारानी बन गई हैं तो स्वयमेव मेरी माता भी हो गई। इसमें मानने का प्रश्न कैसा ?

तिष्यरक्षिता—कुणाल ! सच कहना, क्या तुम रानी पद्मावती और मुझमें कुछ अन्तर नहीं मानते ? (कुछ क्रोध के साथ)

एक की पाषाण-मूर्ति का भी तुम हार्दिक सत्कार करते हो, दूसरी का जीवित होने पर भी मौखिक ! एक का पुत्र होने में तुम गर्व करते हो, दूसरी से सम्बन्ध मानने में लज्जा ! क्या यह ठीक नहीं ? कहो कुणाल, कहो।

कुणाल—माता ! यदि मेरे व्यवहार में आपको कुछ अन्तर दिखाई देता है तो उसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर नहीं। भगवान् ने मेरा हाड़-मांस माता पद्मावती के शरीर द्वारा रचा है, अतएव उनकी मूर्त्ति देखकर मेरा व्यवहार स्वयमेव ऐसा हो जाता है जिससे आपको अन्तर दिखाई देता है। आपका यह विचार सर्वथा निराधार है कि मैं आपको माता कहने में लजाता हूँ। भला लज्जा किस बात की ? जब सम्राट् आपको सम्राज्ञी बनाने में गर्व करते हैं, तो आपको माता मानने में मुझे लज्जा कैसी ?

तिष्यरक्षिता—हाँ, तो यह तुमने स्वीकार किया कि रानी पद्मावती की पाषाण-मूर्त्ति भी तुम्हें अधिक माननीय है; और मैं महारानी होकर भी, जीवितावस्था में भी, उनसे कम आदर की पात्र हूँ। यह मेरा अपमान है, मैं इसे सह नहीं सकती।

कुणाल—माता ! मेरा इसमें कुछ दोष नहीं। मैं तो आपका, माता पद्मावती के तुल्य, सम्मान करता हूँ। परन्तु पुरुष का अपनी जन्मदात्री माता के प्रति स्वभावतः जो अधिक प्रेम या अनुराग हो जाता है, उसके लिए मैं विवश हूँ।

तिष्यरक्षिता—तुम विनत हो, तो क्या काञ्चनमाला भी विनत है? यह भी मेरे साथ ऐसा ही व्यवहार करती है। तुम कितनी ही बातें बनाओ, किन्तु मैं जानती हूँ कि तुम दोनों मुझे घृणा की दृष्टि से देखते हो।

कुणाल—माता! आप यह निराधार कल्पना क्या करने लगीं? देखता हूँ किसी ने आपको बहका दिया है।

तिष्यरक्षिता—क्या मेरे आँखें नहीं हैं? मैं कुछ समझती नहीं?

कुणाल—माता पद्मावती की मूर्त्ति पर मेरा अत्यधिक स्नेह और श्रद्धा देखकर कदाचित् वह भी मेरा अनुकरण करती हो। आप क्रोध न करें। आप जो आज्ञा करें, हमें शिरोधार्य है।

तिष्यरक्षिता—मेरा कुछ आज्ञा नहीं। जब तुम मुझे मृत रानी पद्मावती की पाषाण मूर्त्ति के तुल्य भी नहीं मानते, वरञ्च दोनों में अन्तर होने का कारण बताते हो और उसकी पुष्टि करते हो, तब मुझे तुमसे क्या आशा हो सकती है? मैं कई बार सुन चुकी थी कि महारानी के भाव मेरा सम्बन्ध तुम्हें प्रिय नहीं। आज मुझे प्रत्यक्ष हो गया कि तुम साधारण रानी पद्मावती की पाषाण-मूर्त्ति के सामने जीवित महारानी तिष्यरक्षिता को तुच्छ समझते हो और इसका कारण बताते हो। यह मेरा अपमान है। इसका फल तुम्हें मिलेगा।

कुणाल—(नम्र भाव से) माता! आप जो कुछ दण्ड देंगी मैं सहर्ष सहन करूँगा। मैं आपका विरोध कभी नहीं करता,

इस पर भी आप व्यर्थ क्रुद्ध हो रही हैं। यह आपकी भूल है।

तिष्यरक्षिता—(सावेग) मेरी भूल? मेरी भूल नहीं है। तुम्हें गर्व है; युवराजपद का अहङ्कार है। इस कारण महाराज की प्रधान महिषी का अपमान करते हो, निरादर करते हो, मन ही मन ईर्ष्या करते हो। मैं तुम्हारा गर्व सहन नहीं कर सकती। (जाती है)

कुणाल—न जाने आज इनका यहाँ आना कैसे हुआ? क्या कलह का कोई कारण बनाना था! क्या रहस्य है? (गाता है)

नारी-हृदय कौन पहिचाने?

अखिल-लोक-आकर्ष-करण मायामय, बुध जाने।
कलुष, कठिनता-कलित कलेवर कमल लजाने॥
सब विधि विधिसम अगम अगोचर, कवि क्या जाय सुनाने?
नेह नीति नत नित्य रहे हम, तो भी भाव न माने॥
वे माता हैं, मैं सुत प्यारा, ये तो निरे बहाने।
ईर्ष्या भरा हृदय, देती है बात-बात में ताने॥
यद्यपि पुत्र कहें ऊपर से, कहाँ वचन रससाने।
यही पढ़ाकर नित्य भूप को, कठिन कलह की ठाने॥

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

छठा दृश्य

स्थान—महाराज अशोक का सभागृह

समय—सायङ्काल

[महाराज अशोक बैठे हुए दिखाई देते हैं]

अशोक—(द्वारपाल को बुलाकर) द्वारपाल ! और कोई गुप्तचर प्रतीक्षा में हो तो लाओ।

द्वारपाल—महाराज ! अब सब गुप्तचर, जो आपके दर्शनों के प्रार्थी थे, दर्शन पा चुके, शेष कोई नहीं है।

अशोक—अच्छा, जाओ।

[द्वारपाल का प्रस्थान और पुनः प्रवेश]

द्वारपाल—महाराज ! अमात्य जी पधारे हैं। किसी आवश्यक कार्य से शीघ्र दर्शन करना चाहते हैं।

अशोक—आने दो।

द्वारपाल—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

[अमात्य राधागुप्त का प्रवेश]

राधागुप्त—महाराज ! तक्षशिला से यह अत्यावश्यक पत्र आया है। (पत्र निकालते हैं)

अशोक—(चिन्तापूर्वक) क्या लिखा है ?

राधागुप्त—(पत्र खोलकर) महाराज ! तक्षशिला पर पूर्ण रूप से हमारा अधिकार नहीं जमता। पुनः उपद्रव आरम्भ हो गया।

अशोक—पुनः उपद्रव ! बारम्बार उपद्रव का कारण क्या है ? पत्र पढ़िए ।

(राधागुप्त पत्र पढते हैं)

"देवानांप्रिय प्रियदर्शी सम्राट् श्री अशोक की सेवा मे तक्षशिला नगरी के अमात्यगण सादर प्रणाम के अनन्तर निवेदन करते हैं कि यहाँ के प्रान्त-निवासी पुनः अशान्त हो रहे हैं। अमात्यवर्ग ने उन्हे शान्त करने का भरसक यत्न किया है, परन्तु उनकी इच्छाएँ उत्कट रूप धारण करती जाती हैं, चन्द्रांश की भाँति प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं। उनकी नवीन आकांक्षा है कि सीमा के बहिःस्थित यवनो के साथ मिलकर आपके प्रति विद्रोह प्रज्वलित करके पृथक् राज्य की स्थापना की जाय। गुप्तचरो द्वारा सूचना मिली है कि कुछ व्यक्ति इस उद्देश से षड्यन्त्र रच रहे हैं। इसका यथोचित प्रबन्ध होना आवश्यक है।"

अशोक—महाराज बिन्दुसार के समय में भी पहले एक बार वहाँ विद्रोह हुआ था। तब कुमार सुषीम वहाँ के उपराज थे। उन्हे विद्रोह-दमन करने मे असफल देखकर महाराज ने मुझे उज्जैन से तक्षशिला जाने की आज्ञा भेजी थी।

राधागुप्त—सम्राट् ! तब उपद्रव का कारण यह भी था कि प्रान्त को हस्तगत हुए अल्प समय हुआ था।

अशोक—अग्रामात्य ! आप ठीक कहते हैं किन्तु आपसे यह बात छिपी नही कि वहाँ के लोग स्वतन्त्रता प्रिय हैं,

स्वच्छन्दतापूर्वक अपना कार्य करना चाहते हैं। उनकी इस मनोवृत्ति में तनिक सा भी बाधा उन्हें दुःसह हो उठता है।

राधागुप्त—महाराज को तो उस सामावर्ती प्रान्त का अच्छा अनुभव है। आप क्या परामर्श देते हैं?

अशोक—अमात्य! आपका इतनी अवस्था राजनीतिक मञ्झटों में ही व्यतीत हुई है। क्या आपका अनुभव कम है? कई सङ्गीन मामलों में आपकी बुद्धि के चमत्कार द्वारा मेरा कल्याण हुआ है, अतः आप ही कुछ उचित परामर्श दें।

राधागुप्त—मज्झन्तिक ने धर्मप्रचार की अपूर्व शक्ति से काश्मीर और गान्धार में ८०,००० पुरुषों को बौद्ध मत में दीक्षित किया था। बौद्ध व्यक्ति हिंसा, निष्ठुरता, क्रोध, ईर्ष्या आदि पापों में नहीं पड़ता। अतएव उन प्रान्त निवासियों का आप सदृश धर्मशील और प्रजावत्सल महाराज के प्रति विद्रोह करना सर्वथा अनुचित है।

अशोक—अमात्य! आपका कथन ठीक है किन्तु प्रकृति दुःसाध्य है। ऐसा व्यक्ति विरला ही होता है जिसका कर्म धर्मानुकूल हो। मनुष्य आवेग में आकर कुछ का कुछ कर डालता है। उस समय धर्म और अधर्म का ज्ञान नहीं रहता। जब मनुष्य पर कोई सङ्कट आ पड़ता है तब उसमें प्रतिकार की प्रवृत्ति उत्तेजित हो उठती है, उस

सङ्कट के मूल कारण को हटाने के लिए वह प्रयत्नशील होता है। स्वरक्षा के लिए प्रतिकार क्रिया श्रेष्ठ मार्ग समझा जाता है।

राधागुप्त—सम्राट्! आपकी समझ मे प्रजा पर कौन सा सङ्कट होगा जिससे वह आपके विरुद्ध उत्तेजित हुई? यह तो एक प्रत्यक्ष बात है कि तक्षशिला प्रान्त हमारे प्रधान नगर पाटलिपुत्र से बहुत दूरी पर है। अधिकार-लोलुप लोग स्वतन्त्रता प्राप्त करके अपना अधिकार पुनः जमाना चाहते होंगे। सम्यक् शासन मे इतना बड़ा अन्तर भी बाधा है।

अशोक—सम्भव है, राजाधिकारी अत्याचार करते हो।

राधागुप्त—क्या आप उन प्रान्त-निवासियो के ऐसे व्यवहार का उत्तरदायित्व वहाँ के अमात्यवर्ग पर रखते हैं?

अशोक—अग्रामात्य! आप जानते हैं कि मनुष्य अधिकार-लोलुप है। अधिक से अधिक मात्रा मे अधिकार प्राप्त करना चाहता है। अधिकार प्राप्त करने पर गर्व हो जाता है। गर्वोन्मत्त मनुष्य दूसरो को कुछ नही समझता। सबको पैरों तले रौंदना चाहता है। पैरो तले कुचला जा रहा मनुष्य चिल्लाता और स्वरक्षा के लिए हाथ-पैर मारता है। जब कुछ काम नही बनता तब एक उत्कट इच्छा प्रवृत्त होती है, जो प्रतिकार-रूप मे परिवर्तित हो जाती है।

राधागुप्त—इसी कारण तो आपने व्यवस्था की है कि रज्जूक प्रति पाँचवें वर्ष अपने अपने स्थान में चक्कर लगाया करें ताकि मुख दुःख को जाँच कर और शान्ति का राज्य स्थापित करें। उन्हें न्याय आदि कार्यों में पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है जिससे वे अपना कर्त्तव्य निर्भय होकर पालन कर सकें।

अशोक—आश्चर्य है कि यह सब प्रबन्ध करने पर भी प्रजा पर अत्याचार हो।

राधागुप्त—आश्चर्य कैसा? जब यह प्रान्त इतना दूर है और हमें अपने राजपुरुषों द्वारा ही वहाँ की सूचना मिलती है तो क्या आश्चर्य है यदि सब राजपुरुष एक हो गये हों और मनमानी करते हों। यह बात तो हमारे ध्यान में आ चुकी है कि रज्जूक कई बार कर्त्तव्य-मार्ग से च्युत हो चुके हैं। उनका ऐसा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

अशोक—अग्रामात्य! आप अब तक्षशिला का क्या प्रबन्ध करना चाहते हैं?

राधागुप्त—मेरा विचार है कि यदि महाराज वहाँ स्वयं जाकर कष्ट सहन करें तो अत्युत्तम है।

अशोक—मेरा भी यही विचार है। मैं चाहता हूँ कि मैं स्वयं जाकर प्रान्त का निरीक्षण करूँ और तदनुकूल उपाय सोचकर पुनः शान्ति स्थापित करूँ। मुझे विश्वास नहीं होता कि मेरे स्वयं उपस्थित होने पर प्रजा विद्रोही रह सके।

राधागुप्त—आप पहले वहाँ उपराज रूप मे रह चुके हैं। मुझे निश्चय है कि आप शीघ्र ही शान्ति स्थापित कर देंगे।

अशोक—मै शीघ्र ही प्रस्थान करना चाहता हूँ। आप कल यात्रा के लिए प्रबन्ध कर दे।

राधागुप्त—तथास्तु। मै अभी प्रबन्ध किये देता हूँ।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

सातवाँ दृश्य

स्थान—विष्यरक्षिता का भवन

समय—रात्रि-काल

[विष्यरक्षिता बैठी गा रही है।]

हृदय मत हो तू अधिक अधीर।
जान बूझकर मत फँस इसमें यह है जाल जँजीर॥ हृदय०॥
प्रेम सिन्धु में पड़कर भोले! किसने पाया तीर?
जिसके लिए विकल तू इतना, उसे न तेरी पीर॥ हृदय॥
यह संसार स्वार्थ का सारा, अपना तक न शरीर।
प्रेम तत्व के ज्ञाता होंगे विरले जन मतिधीर॥ हृदय०॥

[आनन्दी का प्रवेश]

आनन्दी—(मुसकराकर) महारानी! मैं भी गाना सुन सकती हूँ?

विष्यरक्षिता—चल जलमुँही! बड़ा आनन्द आ रहा था। सब मिट्टी में मिला दिया।

आनन्दी—आनन्द मिट्टी में मिल गया तो क्या हुआ, आनन्दी तो प्रत्यक्ष है।

विष्यरक्षिता—(हँसकर) तुमसे क्या? आनन्दी! आज महाराज ने आने में अधिक विलम्ब किया। न जाने क्या कारण है।

आनन्दी—थोड़े समय मे ही महाराज के विना इतनी व्याकुलता ! तनिक प्रतीक्षा करो। धैर्य धरो, अभी आते होंगे।

तिष्यरक्षिता—आनन्दी ! तू बड़ी दुष्ट है, कामचोर है। यह तो न हुआ कि दो पग चलकर पता लगा लेती।

आनन्दी—महारानी ! राजा-महाराजाओ को राजकार्य की देख-रेख करनी होती है। कुछ आवश्यक कार्य आ पड़ा होगा, अन्यथा महाराज आपसे मिलने मे विलम्ब क्यो करते ?

तिष्यरक्षिता—तू कल्पना ही करेगी या कुछ वास्तविक कार्य भी ?

आनन्दी—आज्ञा हो तो मनोविनोद की कुछ सामग्री जुटा दूँ। यह तो वास्तविक कार्य होगा।

तिष्यरक्षिता—वस, तू सदा गाने का वहाना ढूँढा कर।

आनन्दी—आप रुष्ट न हो। (हँसकर) आप तो गायन मन्त्र का प्रभाव जानती हैं। महारानी जी ! वृद्ध महाराज इसी मन्त्र द्वारा आपके वश मे हो गये।

तिष्यरक्षिता—तू वहुत मुँह लगती जाती है ! गायन के साथ ही रूप छवि और कला-कौशल भी चाहिए। यही विशेपता मुझमे थी, जिसने मुझे महारानी-पद दिलाया और तू दासी की दासी ही रही। (हँसती है, दर्पण देखती हुई) देख, यह यौवन और सुन्दरता का अनूठा मिश्रण !

आनन्दी—महारानी ! मुझमे सभी वाते न सही, एक-दो तो हैं। आज्ञा दो तो एक-आध तान सुना दूँ। इससे प्रतीक्षा की घड़ी दुःखदायिनी प्रतीत न होगी।

तिष्यरक्षिता—तू बड़ी धूर्त है ! पर न मानेगी । अच्छा, सुना ।

(आनन्दी गाती है)

प्रेम की कैसी अद्भुत रीति !

प्रेमाकृष्ट कुरङ्ग व्याघ्र कब बरसत नाहिं अनीति ।
प्रेम भँवर मं फँस भँवर का क्या कण्टक की भीति ।
चातक, मोर चकोर प्रेम की डोर बँधे कर प्रीति ।
मीन पतङ्ग जानते समुचित मिलन विरह की रीति ।
प्रेम नित्य है, प्रेम सत्य है ईश्वर प्रेम प्रतीति ।
प्रेम रहित जीवन बन्धन सम मेरी सुदृढ़ प्रतीति ।

तिष्यरक्षिता—धन्य है ! धन्य है ! आनन्दी !!

आनन्दी—अब आप भी कुछ गाकर सुनायें ।

तिष्यरक्षिता—मैं पहले गा चुकी हूँ । अब मन नहीं लगता ।

आनन्दी—क्या गाने मं मन ऊब गया ?

तिष्यरक्षिता—अच्छा, क्या सुनेगी ?

[महाराज का प्रवेश]

अशोक—जो सुनाओ ।

(तिष्यरक्षिता का महाराज के सत्कार के लिए उठना और आनन्दी का प्रस्थान)

तिष्यरक्षिता—आज आपने आने में बहुत विलम्ब किया । दूर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी ।

अशोक—आज एक ऐसा समाचार मिला है जिस पर तत्काल विचार करना उचित था ।

तिष्यरक्षिता—(साश्चर्य) ऐसा क्या समाचार था ?

अशोक—तक्षशिला में पुनः विद्रोह आरम्भ हो गया है।

तिष्यरक्षिता—(सविषाद) विद्रोह ! विद्रोह-शान्ति का उपाय सोच लिया ?

अशोक—हाँ, सोच लिया। मैंने वहाँ स्वयं जाने का निश्चय किया है।

तिष्यरक्षिता—(सविस्मय) क्या आप जायँगे ? इस अवस्था में आपका जाना उचित नहीं।

अशोक—तिष्ये ! तुमने सुना होगा कि तक्षशिला में पहले भी कई वार विद्रोह फैल चुका है। एक वार विद्रोह-शान्ति के लिए पूज्यपाद पिताजी ने मुझे वहाँ का उपराज वनाकर भेजा था। मैं वहाँ के वातावरण से भली भाँति परिचित हूँ। मेरा जाना हितकर होगा।

तिष्यरक्षिता—(विचार करके) यदि कुणाल को वहाँ भेज सकूँ तो अत्युत्तम है। (प्रकट) महाराज ! आप कष्ट न उठाएँ। मेरी सम्मति में तो कुमार कुणाल का जाना ठीक रहेगा।

अशोक—प्रिये ! तुम राजनीतिक वातों को क्या जानो ? वहाँ प्रजा में विद्रोहाग्नि फैल रही है। मैं वहाँ की स्थिति से भली भाँति परिचित हूँ। मैं पहले वहाँ का विद्रोह शान्त कर चुका हूँ, अतः मुझे जाने दो।

तिष्यरक्षिता—महाराज ! मेरी वात भी सुनिए। मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूँ। परन्तु मेरा यह एक प्रश्न है कि जव आप वहाँ

निद्रोह-दमन को भेजे गये थे, तब आपको ऐसा अनुभव कब प्राप्त हुआ था ? आवश्यकता आविष्कार की जननी है। समय पड़ने पर बुद्धि स्वयमेव विकसित हो उठती है।

अशोक—तब भी वयोवृद्ध और युवा में अन्तर तो अवश्य है।

तिष्यरक्षिता—महाराज ! कुमार कुणाल पूर्णवयस्क है। वह विद्रोह शान्त कर सकेगा। आप उसे भेजें स्वयं कष्ट न उठावें। जब आप विद्रोह शान्त करने गये थे तब क्या आप वयोवृद्ध थे ?

अशोक—तिष्य ! हठ मत करो। धैर्य से सोचो। देखो, अमात्य राधागुप्त की भी यही सम्मति है। वे मेरा जाना अत्युत्तम बताते हैं।

तिष्यरक्षिता—हाँ, अत्युत्तम रहेगा, परन्तु मुझे अतिशय उपाय की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यह साधारण काम है कुमार कुणाल इसके करने में समर्थ है। वह पराक्रमी और कुशाग्र बुद्धि है। यदि वह इस काम को पूर्ण कर सके, तो इतनी लम्बी यात्रा का कष्ट आप क्यों उठावें ? कुमार को अवसर देना आपका कर्तव्य है। यदि आवश्यकता पड़े, तो आप जा सकते हैं। आपका जाना अन्तिम उपाय है।

अशोक—(स्वगत) बात तो ठीक जँचती है। (प्रकट) अच्छा, कल शीघ्र ही कुमार को सूचना दूँगा।

तिष्यरक्षिता—(सदर्प) ठीक है। अब विश्राम कीजिए।

[पट-परिवर्तन

आठवाँ दृश्य

स्थान—महाराज अशोक का राजभवन

समय—प्रातःकाल

[महाराज अशोक कुमार कुणाल की प्रतीक्षा कर रहे हैं]

अशोक—तिष्यरक्षिता ठीक कहती है कि कुमार को विद्रोह शान्त करने का अवसर देना चाहिए। कुमार की इच्छा जानकर उसे वहाँ जाने का आदेश करूँगा। किन्तु एक दु:ख होगा—कुमार को देखे बिना नेत्र निरर्थक हो जायँगे, हृदय अशान्त रहेगा।...

[कुमार का प्रवेश]

कुमार—(यथेष्ट शिष्टाचार के पश्चात्) पिताजी! आज आप चिन्ताग्रस्त दिखाई देते हैं। क्या कारण है?

अशोक—कुमार कुणाल! समाचार मिला है कि तक्षशिला में विद्रोह फैल रहा है। इसी लिए मैं चिन्तित हूँ। मैंने इसी विषय पर परामर्श लेने के लिए तुम्हें बुलाया है।

कुणाल—(साश्चर्य) तक्षशिला में विद्रोह! तक्षशिला हमारे लिए सदा से चिन्ताप्रद प्रदेश रहा है। इसको ऐसी सुव्यवस्था होनी चाहिए कि विद्रोह दबकर फिर कभी न उठे।

अशोक—कुणाल ! यह तुम जानते हो कि राजा के निरन्तर उपस्थित न होने पर राजपुरुष अत्याचारी हो जाते हैं। अत्याचारों से पीड़ित प्रजा में राज्यशासन के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। यही अविश्वास विद्रोह का मूल कारण है।

कुणाल—पूज्यपाद ! प्रजा पर कौन सा अत्याचार हुआ है ?

अशोक—कुमार ! सो तो ठीक नहीं कहा जा सकता परन्तु यह बात प्रत्यक्ष है कि जन-साधारण या ही राज्य शासन के विरुद्ध कभी सिर नहीं उठाते। जब घोर विपत्तियाँ घेर लेती हैं तभी ऐसी स्थिति उपस्थित होती है कि वे राजदण्ड के भय से निर्भय होकर ऐसे उपद्रव करने पर उद्यत हो जाते हैं।

कुणाल—पिताजी ! प्रजा का अविश्वास पुनः विश्वास में कैसे परिणत किया जा सकता है ? प्रजा का विश्वास टूटा फिर कैसे जोड़ा जा सकता है ?

अशोक—कुमार ! प्रजा में विश्वास उत्पन्न करना असुलभ नहीं है। मैं जब उज्जैन में उपराज था, तब पिताजी ने मुझे तक्षशिला में विद्रोह-दमन के लिए भेजा था। मैंने यह कार्य, बिना किसी विशेष कठिनाई के, पूर्ण कर लिया था।

कुणाल—पूज्यपाद ! इस समय आपने क्या निश्चय किया है ? आप आज्ञा दें, मैं वहाँ जाकर शीघ्र ही शान्ति स्थापित करने का यत्न करूँ।

अशोक—(सहर्ष) प्रिय कुणाल ! यह तो ठीक है कि तुम जाकर विद्रोह दमन करो परन्तु तुम्हें राजाओं की पूर्वनीति का

सम्यक् ज्ञान नहीं, अनुभव नहीं। तुम्हारे जाने से कार्य क्योंकर सफल होगा ?

कुणाल—पूज्य देव ! आपका कथन ठीक है। मै कूटनीति से परिचित नहीं हूँ तथा कहीं उपराज आदि का कार्य भी नहीं कर पाया हूँ, तथापि मुझे विश्वास होता है कि मैं आपका अभीष्ट सिद्ध कर पाऊँगा। राजनीति और प्रेम दो भिन्न मार्ग हैं। राजनीति भी प्रेम-पथ का प्रदर्शन करती है, परन्तु वह प्रेम कृत्रिम है। वह वास्तविक प्रेम से पृथक् है। विद्रोह-दमन के लिए अकृत्रिम प्रेम की आवश्यकता है, अविश्वास का ध्वंस करने के लिए विश्वस्त प्रेम का बीज चाहिए, वत्सलता का अभिषिचन चाहिए, दुःख-कष्टहारी सहानुभूति का कल्पद्रुम चाहिए। इसका फल शान्तिप्रद राज्य होगा।

अशोक—पुत्र ! मैं तुम्हारे वचन सुनकर प्रसन्न हूँ। मुझे आशा होती है कि तुम इस कार्य को पूर्ण कर सकोगे। परन्तु यह बात ध्यान मे रखना कि प्रजा के प्रति अधिक नम्रता से कहीं यह भ्रम न फैले कि राजशक्ति दुर्बल हो गई है, विद्रोह के लिए आवश्यक राजदण्ड का अभाव हो गया है; अन्यथा लोग और उद्दण्ड हो जायँगे।

कुणाल—महाराज ! क्या आपको कलिङ्ग देश की विजय का परिणाम विस्मृत हो गया ? सहस्रों प्राणियों के प्राण-परित्याग का भय जाता रहा ? क्या आपकी यह इच्छा

है कि मैं सैन्य बल सहित तक्षशिला नगरी को उजाड़ कर वना दूँ, और प्रत्येक विद्रोही का नाम मिटा दूँ ? यह विजय शस्त्र विजय होगी, आन्तरिक हृदय की विजय नहीं। स्थायी विजय की प्राप्ति हृदय को वश में करने से मिलती है, शस्त्र भय दिखाकर नहीं। आपने राज्य का जो इतना विस्तार किया है, वह शस्त्र का शरण लेकर नहीं, वरन्‌ बौद्ध मत के प्रताप से, महात्मा तथागत की शरण से, और अहिंसा के प्रेम से। जब तक्षशिला एक प्रधान बौद्ध विद्या विद्यालय है तो मुझे निश्चय है कि मैं बौद्ध मत के अनुयायियों को बौद्ध मत की शिक्षा का स्मरण कराकर, बौद्ध साम्राज्य के अन्तर्गत सम्मिलित रहने का उपदेश देकर अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर सकूँगा। आप कुछ चिन्ता न करें।

अशोक—पुत्र कुणाल! मैं तुम्हारी सद्‌बुद्धि पर प्रसन्न हूँ। परिस्थिति की जाँच करके जो आवश्यक हो, वही करना। आशा है, भगवान्‌ तुम्हें मनोवाञ्छित फल प्रदान करेंगे।

कुणाल—पिताजी! मेरा विचार है कि मैं शीघ्र ही वहाँ के लिए प्रस्थान कर दूँ। आपकी क्या आज्ञा है ?

अशोक—प्रिय कुणाल! अच्छा, जाओ। भगवान्‌ तुम्हारा मङ्गल करें। अग्रामात्य ने प्रस्थान के लिए आवश्यक प्रबन्ध कर रखा है। सेना आदि का भी प्रबन्ध हो चुका है।

कुणाल—पूज्यपाद ! मैं भी अपना कुछ प्रबन्ध करके अभी उपस्थित होता हूँ।

अशोक—(आलिङ्गन-पूर्वक) प्रिय कुणाल ! एक बात का स्मरण रखना। मैं वृद्ध हूँ। तुमसे पृथक् रहना नहीं चाहता। परन्तु भाग्य बलवान् है। आशा है, तुम शीघ्र सकुशल लौटकर मेरा आनन्द बढ़ाओगे। (मुँह की ओर देखकर) तुम्हारे कमल-नयन, तुम्हारा विकसित चन्द्रमुख देखे बिना मेरी वही गति होगी जो चाँद देखे बिना चकोर की होती है।

कुणाल—पिताजी, धैर्य रखिए। मेरा उत्साह बढ़ाइए। भगवान् मङ्गल करेंगे। (प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

नवाँ दृश्य

स्थान—तिष्यरक्षिता का भवन

समय—मध्याह्न

[तिष्यरक्षिता प्रसन्नवदन बैठी है]

तिष्यरक्षिता—अहहह! कुमार कुणाल मेरे मार्ग का काँटा था। काँटे को मैंने बाहर निकाल फेंका, ऐसे स्थान में फेंका है कि जलकर भस्म हो जायगा। विद्रोहियों द्वारा शरीर नाश होने पर सब गर्व चूर्ण हो जायगा। चला है सेनापति बनकर! देख लूँगा कि काञ्चनमाला का भी पति बना रहता है या उससे भी हाथ धोकर इस लोक से कूच करता है। अरे! मेरे तिरस्कार का इसे शीघ्र फल मिलेगा। मैं महारानी हूँ, महाराज की सब रानियों से मेरा सत्कार अधिक होना चाहिए। हाँ, अधिक सत्कार!

[आनन्दी का प्रवेश]

आनन्दी—नाश हो गया! नाश हो गया!!

तिष्यरक्षिता—क्या हुआ? कह, कह।

आनन्दी—सुना है कि कुमार कुणाल तक्षशिला के स्वराज बनाकर भेजे गये हैं। वे सैन्य-बल-सहित वहाँ के लिए प्रस्थान कर चुके हैं।

तिष्यरक्षिता—पगली ! हर्ष की सूचना पर विषाद कैसा ?

आनन्दी—(साश्चर्य) हर्ष ! हर्ष की सूचना ! महारानी, क्या कुमार से मेल हो गया ?

तिष्यरक्षिता—आनन्दी ! आँख की अन्धी ! क्या तू नही जानती कि कुणाल मेरी वृद्धि मे बाधक था, मेरे मार्ग का काँटा था ? यहाँ से उसके दूर जाने मे मेरा हित होगा, कल्याण होगा और सुख होगा ।

आनन्दी—यह कैसे ?

तिष्यरक्षिता—तू रही मूर्ख की मूर्ख ! क्या तूने नही सुना कि तक्षशिला मे विद्रोह फैल रहा है ? विद्रोहाग्नि मे राजनीति से अनभिज्ञ कुमार, अग्नि मे पतङ्ग के समान, भस्म हो जायगा । उपराज बनने से क्या ? समझी ?

आनन्दी—हाँ, समझ गई । परन्तु सुना है कि कुमार ने महाराज से वहाँ, विद्रोह-दमन के लिए, भेजे जाने का स्वय प्रस्ताव किया था ।

तिष्यरक्षिता—आनन्दी ! तुझे बुद्धि न आई । सुन, महाराज ने जब तक्षशिला मे विद्रोह का समाचार सुनाया तो उनका तात्पर्य यही था कि विद्रोह किसी प्रकार शान्त करने का उपाय सोचना चाहिए । विद्रोह की शान्ति के लिए कुमार क्या स्वय पीछे हटकर महाराज को इस अवस्था मे वहाँ जाने के लिए कहता ? इच्छा होती या न होती, किन्तु कुमार को जाने की इच्छा प्रकट करनी ही उचित थी ।

आनन्दी—यदि कुमार का तक्षशिला जाना आपके लिए कल्याणकारी है तो फिर मुझे चिन्ता कैसा? मुझे तो यह भय हुआ था कि कुमार अब उपराज बन गये हैं, फिर महाराज पन्ना पर अधिकार कर लेंगे। उस समय आप पर कठिनाइयों का पर्वत टूट पड़ेगा। वैसे देखने में तो कुमार बड़े सौम्य और दयालु दिखाई देते हैं, परन्तु आपसे चिढ़ते हैं, जलते हैं।

तिष्यरक्षिता—आनन्दी! मैं महारानी बन गई तो इसमें मेरा क्या दोष? दोष महाराज का है, उनसे पूछ। भला महारानी बनना इतना सुगम है! इसके लिए रूप यौवन चाहिए, गुण चाहिए कला-कौशल चाहिए, आकर्षण शक्ति चाहिए। तब कहीं वाञ्छित फल की प्राप्ति हो सकती है। इन्हीं विशेषताओं के द्वारा मैंने वृद्ध महाराज को वश में किया है। (मुट्ठी दिखाकर) उनका हृदय इस मुट्ठी में है। वे कहीं जा नहीं सकते। कुमार मेरा क्या बिगाड़ सकता है?

आनन्दी—महारानी! यह तो मैं मानती हूँ कि आपमें वह रूप राशि है जो रति को पराजित करती है, वह छवि है जो हृदय को मथ डालती है, वह सद्भाव लिया है जो शर्मिष्ठा को लज्जित करता है और वह उमङ्ग है जो समुद्र के ज्वार का उपहास करता है।

तिष्यरक्षिता—वाह, आनन्दी! अब तो तू कवि बनने लगी। तेरी विचारशक्ति बहुत दूर उड़ने लगी। इसका कारण क्या है?

आनन्दी—महारानी! कारण क्या होगा? कारण तो आप स्वयं हैं। जब आप प्रसन्न हैं, मै भी प्रसन्न हूँ। जिसमे आपका सुख है, कल्याण है, हित है, उसी मे मेरा भी सुख, कल्याण और हित है। आनन्द-कानन मे विहार करते हुए प्राणी को दूर की सूझा करती है। इसमे आश्चर्य कैसा?

तिष्यरक्षिता—सखी, मै मानती हूँ कि तू मेरी परम हितैषिणी है। इसी से ऐसा कहती है। यदि भगवान् की कृपा से मेरी गोद भर जाय, तो देखना मेरी शक्ति कितनी बढ़ती है! फिर उसके सिवा इस साम्राज्य का अधिकारी और हो कौन सकता है?

आनन्दी—यह बात तो प्रत्यक्ष ही है। महारानी की सन्तान का सर्व-प्रथम अधिकार है। तब आनन्द-मङ्गल का क्या ठिकाना! कुमार कुणाल की दशा का क्या कहना! और .

तिष्यरक्षिता—(सक्रोध) कुमार का मेरे सामने नाम मत ले। उसका स्मरण कर मुझे उसके द्वारा अपने अपमान की याद आ जाती है, मेरा रक्त उबलने लगता है। अब आशा है, उसका नाम इस ससार मे केवल कथा-शेष रह जायगा। तब मेरा क्रोध शान्त हो जायगा।

[पटाक्षेप

दूसरा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—तक्षशिला में राजसभा

[युवराज कुणाल, महामात्य, प्रादेशिक आदि राजपुरुष तथा प्रजाजन बैठे दिखाई देते हैं। प्रजा के एक प्रतिनिधि का भाषण हो रहा है]

"यशस्वी युवराज धर्मविवर्धन को मैं प्रजा की ओर से विश्वास दिलाता हूँ कि हम सब चक्रवर्ती सम्राट् देवानांप्रिय प्रियदर्शी श्री अशोक के परम भक्त हैं और अपने प्रान्त को इतने विस्तृत साम्राज्य का अंश बना रहने में अपना सौभाग्य मानते हैं। उन्हीं की धर्मनिष्ठ प्रकृति के प्रभाव से हम सबका हृदय भगवान बुद्ध की अनुपम शिक्षा से उज्ज्वल हुआ है। ऐसे देव सदृश महाराज के द्वारा हमारा ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार का सुधार हुआ है। क्या ऐसे लोकप्रिय और लोकहितैषी सम्राट् के गुणों को हम भूल सकते हैं, ऐसे प्रजावत्सल और लोक-कल्पद्रुम सम्राट् के द्वारा प्राप्त लाभ और उदार बर्ताव की ओर से आँख मूँद सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। अतएव हमें सम्राट् के प्रति विरोध क्या होगा?

हम भली भाँति जानते हैं कि महाराज ने हमारे हित के लिए ही रज्जूक आदि राजपुरुषों को नियुक्त किया है। किन्तु यहाँ का वातावरण ऐसा है कि, एक दूसरे का अनुकरण करते हुए, अधिकांश राजपुरुष हम निर्बलों पर मनमाना अत्याचार करते हैं। इसी लिए कुछ पुरुष इस राज्य-सञ्चालन से विरक्त हो गये है। परन्तु अब युवराज कुणाल के उपराज-रूप मे यहाँ उपस्थित हो जाने पर हमे आशा बँध गई है कि हम अब पहले की तरह पैरो तले नही रौंदे जायँगे, वरञ्च हमारा जीवन अब सुख और शान्ति का जीवन होगा। जो अमात्य हमारे साथ पहले क्रूर वर्ताव करते थे वे अब आप जैसे धर्मशील, प्रजावत्सल दीनबन्धु और सत्यासत्य-निरीक्षक के सम्मुख सत्पथ मे विचलित होने का साहस न कर सकेंगे। हमे पूर्ण विश्वास है कि उपराज धर्मविवर्धन कुणाल हमारे ऊपर छाये हुए आतङ्क की घटा को न्याय-रूपी वायु के झोंके से शीघ्र ही उड़ा देंगे। मै प्रजा की ओर से उपराज को विश्वास दिलाता हूँ कि हम सम्राट् अशोक के, किसी अन्य प्रान्त की प्रजा जैसे ही परम भक्त हैं। उपराज और सम्राट् अपने हृदय से हमारे प्रति मनोमालिन्य को दूर कर दे और हमे पूर्ववत् अपनी प्रिय भक्त प्रजा मानें।"

उपराज कुणाल—प्रिय सज्जनो, अमात्यगण तथा राजपुरुषो! सबसे पहले मै आप सबको आशातीत आदर-सम्मान करने के लिए हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। मै यहाँ आपके

पास चक्रवर्ती सम्राट् देवानाप्रिय प्रियदर्शी था अशोक की आज्ञा से शान्ति स्थापित करने के लिए भेजा गया हूँ। आपके इस वचन से स्पष्टतया यह जान पड़ता है कि सम्राट् वास्तव में इस विचार में थे कि तक्षशिला नगरी विद्रोहाग्नि में जल रही है राजविद्रोह उग्र रूप धारण कर चुका है अतएव दण्ड और सैन्यबल के द्वारा यहाँ अपना प्रभुत्व स्थिर रखना होगा। किन्तु वहाँ, महाराज का ऐसा अनुमान न था। वे अनुभव कर रहे थे कि प्रजा पर बड़ा अत्याचार हुआ है, राजदुखियों को सताया गया है, स्वतन्त्रता में रोक टोक की गई है, न्याय के स्थान में अन्याय हुआ है। अतएव दूरदर्शी सम्राट् ने अन्य किसी राजपुरुष को न भेजकर मुझे यहाँ आने का आदेश किया। मुझे यहाँ निःशस्त्र आने में भी कुछ भय न था। मैं जानता था कि मौर्य वंश ने अपनी जड़ कहाँ तक फैलाली है हमारी प्रजा राज्य के प्रति भक्ति और अनुराग में कहाँ तक दृढ़ है। परन्तु राजसी ठाठ के लिए मुझे यहाँ सेना सहित आना पड़ा। मैं अब यहाँ तक्षशिला निवासियों के बीच खड़ा हूँ। यदि किसी व्यक्ति का मौर्य कुल के प्रति द्वेष हो, महाराज अशोक से कोई बदला लेना चाहता हो, तो वह मेरे सम्मुख होकर मेरे शरीर पर अपना क्रोध शान्त कर सकता है। मुझे इस शरीर पर कुछ मोह नहीं। यदि किसी प्रकार इस शरीर से किसी का कुछ

काम हो सके, इसके द्वारा यदि किसी का क्रोध शान्त हो सके, तो मै तृप्त हो सकूँगा। मेरी तृप्ति के साथ-साथ एक दूसरे व्यक्ति की भी तृप्ति हो सकेगी।...

प्रजा का प्रतिनिधि—यशस्वी उपराज ! आप यह अत्यन्त तीक्ष्ण वचन कह रहे हैं। हममे ऐसा कोई अभागा नही जिसकी आत्मा ऐसे घृणित विचारो से कलुषित हो। आपके ये वचन हमारे हृदयो के लिए वज्राघात हैं।

कुणाल—सज्जनो ! मेरा यह तात्पर्य नही कि मुझे आपकी भक्ति तथा अनुराग पर सन्देह है। मेरा यह भी आशय नही कि मेरे वचन आपको असह्य प्रतीत हों। मेरी तो यह इच्छा है कि मै प्रत्येक व्यक्ति को तृप्त कर सकूँ। यदि ऐसा कोई व्यक्ति नही तो मुझे अतीव हर्ष है। हर्ष इसलिए नहीं कि मेरा जीवन बच गया; किन्तु इसलिए कि मेरे कुल के प्रति प्रजा की दृढ़ भक्ति है, मेरे पूज्य पिता सम्राट् अशोक के व्यवहार से किसी को दुःख नहीं। प्रजा को जो दु.ख है वह किसी अन्य द्वार से है। वह अन्य द्वार क्या है, कैसा है, यह मैं जाँच करके निश्चय करूँगा। आततायियों के ऊपर मैं तनिक भी दया न करूँगा, दण्डनीय लोग अवश्य दण्ड पायेंगे। आप मुझे कुछ अवधि दें। मैं इस अवधि मे आपके दु ख-कण्टक दूर कर दूँगा। न्याय के स्थान पर न्याय होगा, दण्ड के स्थान पर दण्ड।

प्रजाजन—हम भी यही चाहते हैं। हमारी भी यही इच्छा है।

प्रधान अमात्य—यशस्वी युवराज, अमात्यगण, राजपुरुष तथा उपस्थित सज्जनो! हम सबको इस समय अपार हर्ष हुआ है। चक्रवर्ती सम्राट् देवानांप्रिय प्रियदर्शी श्री अशोक के पुत्र यशस्वी युवराज श्री धर्मविवर्धन कुणाल ने दर्शन देकर हमें कृतार्थ किया है। यह हमारा अहोभाग्य है कि हमें इनके दर्शन प्राप्त हुए। इन दर्शनों के प्राप्त होने का कारण हमें, अर्थात् राजपुरुषों को, ही बताया जाता है। युवराज हम पर अत्याचार का सन्देह करते हैं, प्रजाजन हम पर क्रूरता का दोष लगाते हैं। हम दोनों ओर से गये। न तो महाराज द्वारा यश प्राप्त करने के अधिकारी हुए, न प्रजावर्ग से आशीर्वाद मिलने के पात्र। राजसेवा बड़ा कठिन कार्य है। कभी राजकोप के आ घेरने का भय होता है, कभी प्रजामण्डल द्वारा अश्रद्धा की भरमार का। यदि राजसेवा में राजपक्ष की ओर कुछ न्यूनता हुई तो राजा ने उत्तर माँग लिया, यदि प्रजा के पक्ष में कुछ न्यूनता हुई तो प्रजा ने कलङ्क लगा दिया। दोनों पक्षों का ध्यान रखकर चलना बड़ी टेढ़ी खीर है। इस कण्टकमय पथ पर सीधा चलना प्रत्येक व्यक्ति के लिए असम्भव सा है। एक ओर तनिक झुकाव हुआ, दूसरी ओर से तत्काल कोपपात्र बनना पड़ा। इस मार्ग पर चलने के लिए, मैं समझता हूँ कि विरले पुरुष ही

उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक पुरुष को ऐसे कर्त्तव्य-शील राज-पुरुष की कठिनाई का ध्यान रखना चाहिए। न्यूनता प्रत्येक प्राणी मे होती है। हर एक से असावधानी होती है। यदि किसी कारण किसी राजाधिकारी का कार्य सन्तोष-जनक नही, तो मै विश्वास दिलाता हूँ कि सूचना मिलने पर मै पहला पुरुष होऊँगा जो उस कर्मचारी को पदच्युत करने मे हाथ उठाऊँगा और उचित दण्ड दिलाऊँगा। साथ ही मान्यवर उपराज महोदय से मै निवेदन करता हूँ कि जिस-जिसको वे अपराधी पावे, उस-उसको दण्ड दिये विना न छोड़े, चाहे वह अपराधी वडे से वडा राजपुरुष हो या प्रजा में से ही कोई क्यो न हो। यह सुनकर आप चकित होगे कि मैने "प्रजा मे से ही कोई क्यों न हो" क्यों कहा है। मान्यवर उपराज तथा अन्य उपस्थित सज्जनो से मेरा नम्र निवेदन है कि वे शान्तिपूर्वक दोनो पक्षो का वृत्तान्त सुने। सम्भव है, दोनों पक्षो का सप्रमाण वृत्तान्त सुनने पर आपकी सम्मति मे कोई परिवर्तन हो जाय। इस समय आप राज-पुरुषो पर हो सारा दोष लगाते हैं, तव आपको दोष के कुछ अन्य पात्र भी मिल जायें। मैं सवसे निवेदन करता हूँ कि सव लोग शान्ति और धैर्य से काम करें। भगवान् कल्याण करेगे।

कृणाल—अमात्यगण, राजपुरुष तथा उपस्थित सज्जनो! मैंने दोनो पक्षो के नेताओ की वक्तृताएँ सुन ली। मै यहां की

स्थिति से ठीक परिचित नहीं। मुझे यहाँ आये अभी अल्प समय ही हुआ है। अतएव मैं क्याकर किसी पक्ष का पक्ष लगाऊँ? दोनों पक्षों का मेरी यही आशा है कि वे परस्पर वैर-भाव छोड़ दें। कर्त्तव्य पर स्थिर रहकर अपना कार्य-सञ्चालन करें। इस अशान्ति का पूर्णतया अन्त हो जाय और अपराधियों को यथोचित दण्ड दिया जाय। जिन पर अत्याचार हुआ है उन्हें, बदले में धन आदि दिया जायगा। इस समय आप सब सम्राट् के आज्ञानुसार शान्त होकर अपना अपना काम करें और विश्वास रखें कि मौर्य-राज्य के न्याय पर कलङ्क न लगने पायेगा।

प्रजाजन—हमारी यही प्रार्थना है, हमारी यही प्रार्थना है।

कुणाल—हाँ, यही होगा। अब सभा विसर्जित होती है।

(सबका प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

दूसरा दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र का विशाल मार्ग

[कुछ कोलाहल सुनाई पड़ता है]

अहहहहह ! अहहहहह ! वाह उपराज कुणाल ! धन्य हो ! धन्य हो !! वीरता इसे कहते हैं। न एक योद्धा मृत्यु को प्राप्त हुआ ..। अरेरे क्या कह दिया "मृत्यु को प्राप्त हुआ"। नहीं-नहीं, ऐसा नहीं। यह कहना चाहिए, न एक योद्धा क्षत हुआ, न एक शस्त्र से काम पड़ा, न एक अस्त्र छोड़ा। और, और अहहहह ! अहहह ! और विद्रोह शान्त हो गया। सुनो, पाटलिपुत्र-निवासियो ! विद्रोह शान्त हो गया। आनन्द मनाओ। उत्सव करो, उत्सव।

एक—अरे तुम्हें यह शुभ सूचना किसने दी ? तुम हर्ष से फूले नहीं समाते हो। क्या कोई बड़ा उपहार मिला है ?

पहला—उपहार ! अरे उपहार का क्या कहना ? मेरे भाई धनगुप्त को महाराज से पारितोषिक मिला। वह यह शुभ सूचना लेकर सम्राट् के पास आया था। सम्राट् ने अपनी बहुमूल्य अँगूठी उतारकर मेरे भाई को उपहार में दे दी।

एक—केवल एक अँगूठी से इतना हर्षोन्माद ! वाह, धनगुप्त के भाई, ख़ूब भेंट पाई।

पहला—अरे भद्र पुरुष ! मेरा नाम क्यो नहीं लेते नाम ? क्या बलगुप्त के नाम से भय लगता है ?

एक—रड बला है। न जा हम वलगुप्त म भय खान। इदगुप्त म कभा सामना नहा पडा।

दूसरा पुरुष—अरे, अँगूठा का रगा। यदि अँगूठा धनगुप्त का मिला तो तुम्हें इससे क्या ?

वलगुप्त—अरे। घरवाला क नाम चार गाँव भा हुए हैं। यह क्या इप का बात नहा ?

तीसरा पुरुष—(आश्चय से) चार गाँव ?

वलगुप्त—हाँ हाँ, चार गाव। जाओ, जाओ तुम हमार भाग्य स इर्ष्या करत हो, हम जाते हैं। (जान लगता है)

चौथा पुरुष—(हाथ खींचकर) अजी, जाते कहाँ हो ? हम आपम कुछ छान नहा लेत। रुद्रदत्त स छुटकारा पाना सहज नहीं। पहले एक प्रश्न का उत्तर दते जाओ।

(वलगुप्त खडा हो जाता है)

रुद्रदत्त—हमने सुना है कि महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं। सम्राट् क दर्शन कैसे हुए ?

वलगुप्त—अरे तुम निकल न पुरान मनका। क्या हम पर विश्वास नहा ? क्या एस शुभ समाचार क लिए रोकटोक हा सकता है ? दिखाऊँ वह जगमगाता मन ललचाता अँगूठा ! अँधेर में उजाला हा जाय। अच्छा, जान दो, दिखान का कुछ आवश्यकता नहा। तुम लोगा का रत्न, नालम मणि, का क्या पहचान !

(रुद्रदत्त और इन्द्रगुप्त आगे बढ़कर बलगुप्त को पकड़ लेते हैं। एक बाँह खींचता है, दूसरा टाँग)

रुद्रदत्त—(बलगुप्त की ठोढ़ी पकड़कर) क्यों रे! तूने ही रत्न-नीलम देखे हैं? आज रत्न का एक कण देख लिया तो आँखें फट गईं। कभी तुम्हारे पिता-पितामह ने भी रत्न देखा था?

बलगुप्त—(भयपूर्वक) बचाइयो, बचाइयो! मेरी अँगूठी छिन जायगी।

दोनों पुरुष—अरे! हम कोई चोर हैं या डाकू? सम्राट् अशोक के राज्य मे दूसरे की वस्तु कौन हथिया सकता है? लाओ, दिखाओ अँगूठी! राज्य-पुरस्कार के छिपाने की कोई आवश्यकता नही।

बलगुप्त—(टटोलकर) अरे! अँगूठी नहीं मिलती। क्या हुआ? (सोचकर) अरे, अँगूठी तो मै भाई के पास छोड़ आया।

दर्शक जन—झूठ बोलता है, झूठ।

बलगुप्त—नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। मै झूठ कभी नही बोलता। (कान छूता है—बाये हाथ से दायाँ कान और दाये से बायाँ कान)

(दर्शक जन हँसते हैं। रुद्रदत्त और इन्द्रगुप्त भी हँसते हैं। बलगुप्त अवसर पाकर भाग जाता है। सब उसकी ओर देखते हैं। दूर से एक रथ दौड़ा आता है)

इन्द्रगुप्त—(रथ की ओर देखकर) रुद्रदत्त ! आज इसका मुँह क्या ताक रहे हो ? यह तो भाग निकला। अब एक ओर हट आओ। देखो, वह रथ बड़े वेग से आ रहा है। (रथ की ओर सङ्केत करता है)

(लोग इधर-उधर हट जाते हैं। रथ पास से निकल जाता है। रथ में नगर के प्रसिद्ध वैद्य कीर्तिसेन विराजमान हैं)

रुद्रदत्त—मैंने कहा था कि महाराज अस्वस्थ हैं। यह महाराज का रथ था। वैद्य कीर्तिसेन उधर जा रहे हैं।

इन्द्रगुप्त—(साश्चर्य) महाराज क्या वास्तव में रोगी हैं ? इस श्रेष्ठ और पवित्र व्यक्ति को रोग से मुक्ति नहीं ? यही कारण है कि विद्रोह-दमन की सूचना पाने पर नगर में उत्साह दिखाई नहीं देता। भाई रुद्रदत्त ! उन्हें कौन सा रोग है ?

रुद्रदत्त—रोग का क्या पूछते हो ? बड़ा भयङ्कर रोग है।

इन्द्रगुप्त—रोग का नाम बताओ। भगवान् करें, हमारे सम्राट्—दयानिधि सम्राट्—शीघ्र नीरोग हो जायँ।

रुद्रदत्त—सुना है कि महाराज को मुख द्वारा विष्ठा होती है। रोम-रोम से मल निकलता है। वैद्य लोग इसको पुराणोक्त रोग कहते हैं।

इन्द्रगुप्त—भगवान् कल्याण करे। तुम इस रोग को दुःसाध्य सा बताते हो।

रुद्रदत्त—हाँ, सब इसे दुःसाध्य ही कहते हैं। वैद्य लोग निरुपाय हैं। कोई औषध चमत्कार नहीं दिखाता।

इन्द्रगुप्त—नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। समस्त प्रजा भगवान् से सम्राट् की स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिए हार्दिक भाव से वन्दना करे। आशा है, भगवान् प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

रुद्रदत्त—हाँ, यह उपाय भी कर देखना चाहिए। चलो, इसका प्रबन्ध करें।

इन्द्रगुप्त—हाँ, चलो।

दोनो—नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। (प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

———

देवदत्त—महाराज ने पहले नीरोग होने का उपाय पूछा। महारानी ने कहा कि उस महापुरुष ने उपाय गुप्त रखने को कहा है। उसका आदेश है कि रहस्य प्रकट कर देने से औषध का महत्त्व जाता रहेगा। महापुरुष के प्रति श्रद्धा के कारण महाराज ने स्वीकृति दे दी।

राधागुप्त—महाराज ने और कुछ नहीं कहा ?

देवदत्त—महाराज ने कुमार कुणाल को शीघ्र बुला लेने की इच्छा प्रकट की किन्तु महारानी ने कहा कि आप धैर्य रखें। दो तीन दिन में आप स्वस्थ हो जायेंगे। तब तक कुमार आ भी नहीं सकेंगे, और जब तक उन्हें सूचना मिलेगी, आप नीरोग हो जायेंगे। उन्हें निरर्थक प्रदेश से बुला लेना उचित नहीं।

राधागुप्त—तिष्यरक्षिता ! धन्य तेरा बुद्धि कौशल ! महाराज तो पूर्णतया इसके वश में हैं। यह जो चाहे करवा ले। मुझे तो महाराज अशोक का मोह बाँधे रहा है, अन्यथा मैं किसी गिरि कन्दरा में बैठा भगवद्भजन में मग्न होता। क्या करूँ ? महाराज के वचन की अवहेलना नहीं की जाती। अच्छा, देखता हूँ, तिष्यरक्षिता क्या रङ्ग लाती है। हाँ, देवदत्त ! जब तक सम्राट् की दशा चिन्ताजनक है, तुम इसी कार्य में लगे रहो। समय-समय पर वहाँ जाकर सम्राट् की टोह लेते रहो।

देवदत्त—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

[पटपरिवर्तन

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—महारानी तिष्यरक्षिता का भवन

समय—प्रातःकाल

[तिष्यरक्षिता चिन्तित अवस्था में बैठी दिखाई देती है]

तिष्यरक्षिता—भगवन् ! क्या मेरी आशा पूर्ण न होगी, क्या आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान न देंगे ? नहीं, नहीं, आप अवश्य मेरे ऊपर कृपा करेंगे। आपने आज रात के पिछले पहर मुझे वचन दिया है कि आज मेरे पास एक ऐसा रोगी यहाँ आयेगा ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपका वचन शीघ्र फल लायेगा। आप सर्वशक्तिमान् हैं, आप सबल हैं, मुझ निर्बल अबला पर अनुग्रह करें।

[सावेग प्रवेश करके]

आनन्दी—(सहर्ष) हो गया, महारानी ! आपका मनोरथ पूर्ण हो गया ! बाहर वैद्यराज पधारे है। साथ मे एक रोगी लाये हैं।

तिष्यरक्षिता—(प्रसन्न होकर) नमो बुद्धाय ! नमो बुद्धाय !! भगवान् का वचन पूरा हो गया। वैद्यराज को यहाँ शीघ्र ले आओ।

आनन्दी—जो आज्ञा।

[प्रस्थान और वैद्यराज के साथ प्रवेश]

वैद्यराज—(पास आकर) महारानी ! प्रणाम।

तिष्यरक्षिता—वैद्यराज ! मैं आपका हार्दिक स्वागत करती हूँ। कहिए रोगी कैसा है।

वैद्यराज—महारानी ! जैसा रोगी आप चाहती थीं, वैसा ही अकस्मात मिल गया। मैं उसे यहाँ ले आया हूँ।

तिष्यरक्षिता—बहुत ठीक। अब रोगी की चिकित्सा करनी होगी मेरा विचार है कि शल्य चिकित्सा का प्रयोग किया जाय और तब औषध की जाँच की जाय।

वैद्यराज—हाँ, रोगी को सम्मोहन-चूर्ण खिलाकर शल्य चिकित्सा हो सकती है। इससे उसका सारा शरीर स्वप्नावस्था में हो जायगा। उपाय तो अच्छा है, परन्तु एक कठिनाई है। रोगी के प्राण महान सङ्कट में होंगे। इसी कारण हमने इस उपाय का प्रयोग अभी महाराज पर करना नहीं चाहा था।

तिष्यरक्षिता—वाह वैद्यराज ! रोगी क्या इस समय महान सङ्कट में नहीं है ! राजा महाराजाओं के मान के लिए, शान के लिए, सैकड़ों सहस्रों योद्धा मर मिटते हैं, रक्त की नदियाँ बह निकलती हैं, नगर ग्राम क्या समस्त देश उजड़ जाता है। यहाँ सम्राट् पर ऐसा सङ्कट है क्या एक मनुष्य भी अपने प्राण पर खेलने को उद्यत नहीं ? ऐसे मनुष्य का अधिक काल तक जीवित रहना असम्भव है। तो फिर ऐसे शरीर से परोपकार सञ्चय क्यों न किया जाय ?

वैद्यराज—मैं आपसे सहमत हूँ। मेरे विचार में रोगी से शल्य चिकित्सा के विषय में अनुमति ले ली जाय। मुझे

आशा है कि उसे कुछ विरोध न होगा। रोगी को बुला लिया जाय।

[तिष्यरक्षिता के आदेशानुसार आनन्दी
रोगी को लेकर भीतर आती है]

रोगी—(आश्चर्य से मन मे) धन्य मेरे भाग्य जो आज मै राज-भवन मे आया। कितना विशाल प्रासाद है ! (पास पहुँच-कर) महारानी के चरणो मे चन्द्रदत्त का प्रणाम पहुँचे।

तिष्यरक्षिता—चन्द्रदत्त ! चिरञ्जीव रहो। कहो, यह रोग कितने दिनों से है।

चन्द्रदत्त—देवी ! यह रोग है तो थोड़े ही दिनों से, परन्तु बड़ा भयङ्कर है। मैं निराश होकर इन वैद्यजी की शरण मे पहुँचा था। इन्होने मुझसे कहा कि महारानीजी इस रोग की औषध देगी। अतएव मै आपकी शरण मे आया हूँ। यदि इस रोग से छूट जाऊँ, तो मैं सब कष्ट भूल जाऊँगा; वरञ्च यह एक लाभ स्मरण रहेगा कि इस रोग के कारण महारानी और उनके राजभवन देखने का अवसर मिला।

तिष्यरक्षिता—चन्द्रदत्त ! इस रोग की चिकित्सा के लिए शल्य-चिकित्सा का प्रयोग होगा। शल्य-चिकित्सा द्वारा तुम्हारे पेट का विकार जाँचकर औषध दी जायगी। क्या सम्मति है ?

चन्द्रदत्त—देवी ! मैं तो आपकी शरण मे आ गया हूँ। मृत्यु वैसे भी सिर पर नृत्य कर रही है, यदि शल्य-चिकित्सा से जीवन बच सकने की आशा हो तो मुझे इसमें कुछ विरोध नहीं।

अपना आप से मैं जीवनलाला समान समझता हूँ। यदि आपकी बुद्धि के चमत्कार से मेरा जीवन बच सकता है, तो मुझे इसमें कुछ बाधा नहीं।

तिष्यरक्षिता—अब तुम्हें किसी से मिलने की अभिलाषा है?

चन्द्रदत्त—नहीं, देवी! अब मेरा कोई नहीं। स्त्री थी, वह मर गई। सन्तान हुई नहीं। अब मेरा कोई नहीं जिससे मुझे मिलने की लालसा हो। वैसे तो मृत्यु से मुझे भय नहीं है, परन्तु इस निकृष्ट रोग द्वारा मरने की चिन्ता अवश्य है। इच्छा होती है कि कुछ पुण्य उपार्जन कर लूँ। शान्ति से प्राण त्याग कर शान्त हो जाऊँ।

तिष्यरक्षिता—तुम्हारा व्यवसाय क्या है? घर कहाँ है?

चन्द्रदत्त—देवी! मैं लुहार का काम करता हूँ। नगर के उत्तरी द्वार के पास मेरी कुटिया है। परन्तु इससे क्या? मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगा। यदि भगवान् ने आयु और दी, तो भिक्षु बनकर भगवद्भक्ति में रत रहूँगा।

तिष्यरक्षिता—वैद्यराज! अब विलम्ब मत कीजिए। आइए, आप शल्य चिकित्सा का सब प्रबन्ध ठीक कीजिए। चन्द्रदत्त, तनिक प्रतीक्षा करो। अभी आती हूँ।

वैद्यराज—बहुत अच्छा। नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। (दोनों का प्रस्थान)

[पट परिवर्तन

छठा दृश्य

स्थान—तिष्यरक्षिता का विश्राम-गृह

[तिष्यरक्षिता प्रसन्न-वदन बैठी है]

तिष्यरक्षिता—आज मेरी बुद्धि की महत्ता सब मान जायँगे। चन्द्रदत्त यहाँ शल्य-चिकित्सा द्वारा स्वस्थ हो गया। रोग का मूल नष्ट हो गया। केवल पट्टी का कष्ट रह गया। वह भी समय पाकर ठीक हो जायगा। वैद्यराज मेरे उपाय से विस्मित होकर मेरी भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे थे। अहहह! पहले मै रानियों मे श्रेष्ठ थी, अब वैद्यो मे अग्रणी कहलाऊँगी। ससार को विदित हो जायगा कि एक स्त्री अपनी बुद्धि द्वारा क्या कर सकती है। अब मै वह आदर पाऊँगी जो किसी महारानी ने न पाया होगा। आज मेरे सौभाग्य का सूर्य फिर उदय हो गया।

[प्रवेश के अनन्तर]

आनन्दी—महारानीजी, बलिहारी है आपकी बुद्धि की! अब तो सुख ही सुख है।

तिष्यरक्षिता—वाह आनन्दी, आज हमारे सुख की क्या सीमा! हम दो अबलाओ की बुद्धि ने वह काम कर डाला जिसे करने मे सब 'सबल' निराश हो चुके थे। आज महाराज बिल्कुल स्वस्थ हो जायँगे।

आनन्दी—हाँ, महाराजाज! यही औषध अब अपना प्रभाव महाराज पर दिखावेगी। वाह रे औषध! महानौषध! किसको मालूम था कि इस तुच्छ और घृणा के पात्र प्याज में यह गुण है!

तिष्यरक्षिता—हाँ, आनन्दी! आश्चर्य तो यही है कि जहाँ मिर्च, पिप्पली, अदरक आदि वस्तुओं के द्वारा रोग के कृमियों का नाश न हुआ वहाँ प्याज से उनका समूल नाश हो गया। प्याज के रस से सब कृमि नष्ट होकर विष्ठामार्ग से निकल गये। ये कृमि जब ऊपर जाते थे, तब इनके साथ विष ऊपर जाने लगती थी जब ये नीचे जाते थे तब विष्ठा नीचे जाने लगती थी। यही रोग का कारण था। अब यह औषध महाराज पर अपना अद्भुत प्रभाव दिखायेगी।

आनन्दी—और यही फल लायगा। महाराज को स्वस्थ कर दिखायेगी। संसार में तुम्हारे नाम का डंका बजा जायगा।

तिष्यरक्षिता—अभी तो आधा काम हुआ है। पूरा काम तब होगा जब मेरी आँखों से कुणाल-रूपी काँटा दूर हो जायगा।

आनन्दी—आपकी आँखों से तो वह पहले से ही दूर है।

तिष्यरक्षिता—हाँ-हाँ यह समझ ले कि अब कुणाल पद-दलित होकर मिट्टी में मिल जायगा।

आनन्दी—ठीक है। आपकी इच्छा का विरोध करनेवाले का यही परिणाम है।

तिष्यरक्षिता—हाँ, अब महाराज से इस औषध का वर्णन कर दूँ। इसके अनन्तर इस औषध का विशेष रूप से प्रयोग कर दूँ।

आनन्दी—बड़े आश्चर्य की बात है कि अब तक किसी वैद्य को यह औषध नहीं सूझी।

तिष्यरक्षिता—एक वैद्य ने प्याज खाने के लिए कहा तो था किन्तु महाराज ने ऐसे निकृष्ट पदार्थ को खाने से इनकार किया। किसो को क्या मालूम था कि इसमे इतने गुण भरे हैं !

आनन्दी—महारानी ! वास्तव मे जब भगवान् की कृपा होती है, तब वह किसी न किसी बहाने मनोरथ को सुफल करता है।

तिष्यरक्षिता—हाँ, ठीक है। अब जाती हूँ।

आनन्दी—मैं भी अपने कार्य पर जाती हूँ। (दोनो का प्रस्थान)

[पट-परिवर्त्तन

सातवाँ दृश्य

स्थान—अशोकाराम विहार

[आनन्दगुप्त का प्रवेश]

आनन्दगुप्त—नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। भगवान् की महिमा अपरम्पार है। चाहे रङ्क को राजा कर दे, राजा को रङ्क मृत को जीवित कर दे, जीवित को मृत। नमो बुद्धाय। पुण्यप्रताप के सामने भगवान् दयालु हो जाते हैं, अपने भक्तों को दुःख से उबार लेते हैं शरणागत की रक्षा करते हैं। अद्भुत है भगवान् की माया! महाराज मृत्यु द्वार से बाहर निकल आये। कल तक निराशा झलक रही थी, आज आशा दीख पड़ती है। कल प्रत्येक हृदय महाराज की वेदना पर दुःखित था आज उनके स्वस्थ हो जाने का समाचार पाकर पुलकित है। कल प्रजा में शोक-भाव का सञ्चार था, आज हर्ष और उल्लास है।

(दूर से कोलाहल सुनाई देता है)

आनन्दगुप्त—(उधर देखकर) अरे! वह दूर से कूदता फाँदता मृग गति से कौन आ रहा है! (ध्यान से देखकर और शब्द सुनकर) यह तो कोई राजादेश सुनाता दिखता है। इस समय राजादेश क्या होगा? चलूँ, सुनें। (आगे बढ़ता है)

[राजपुरुष का प्रवेश]

राजपुरुष—अररररर पाटलिपुत्र-निवासियो ! आप सबको यह समाचार सुनकर हर्ष होगा कि देवानाम्प्रिय प्रियदर्शी चक्रवर्त्ती सम्राट् श्री अशोक सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता की चिकित्सा द्वारा स्वस्थ हो गये। सम्राट् ने सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता पर प्रसन्न होकर उनको सात दिन तक राज्य करने का अधिकार दिया है। अब से लेकर एक सप्ताह तक सम्राज्ञी श्रीमती तिष्य-रक्षितादेवी राज्य करेंगी। (ढोल बजाता हुआ दूसरी ओर चला जाता है)

(लोग इधर-उधर जाने लगते हैं। भवगुप्त और बुद्धगुप्त आनन्दगुप्त को देखकर पास खड़े हो जाते हैं)

भवगुप्त—भगवान् ने महाराज पर कृपा दिखाई है। तिष्यरक्षिता को यश की उज्ज्वल चादर ओढ़ाई है। महाराज के स्वस्थ होने से सब प्रसन्न हैं। तिष्यरक्षिता की प्रसन्नता क्या इसमें न थी जो सात दिन के राज्य की इच्छा उठी ? देखें, यह सप्ताह कैसे व्यतीत होता है ! क्या-क्या घटनाएँ सामने आती हैं !

आनन्दगुप्त—भव ! तुम व्यर्थ दोषारोप करते हो। यह तो मैं आप अपने कानों से सुन आया हूँ कि महाराज ने स्वयं तिष्यरक्षिता को वर प्रदान किया।

भवगुप्त—वर देने का तात्पर्य राज्य-प्रदान नहीं हो सकता। यह छल है।

बुद्धगुप्त—महाराज ने तुरन्त स्वीकृति दे दी होगी।

आनन्दगुप्त—नहीं, महाराज न पूछा ' तब तक मैं क्या करूँगा ?"
तब रानी तिष्यरक्षिता ने कहा—"एक सप्ताह के पश्चात् आप पुनः राजा होंगे। मुझे यह जानने का कुतूहल है कि राज्य कैसे किया जाता है, राजा का क्या कर्त्तव्य होता है, इसी लिए मैंने यह वर माँगा है।" यह उत्तर सुनकर सम्राट् ने सम्राज्ञी की बात स्वीकार कर ली।

भवगुप्त—इसे यह सात दिन का राज्य भी यश का भागी होता है, या अपयश का। तिष्यरक्षिता की यह लालसा उचित न थी।

बुद्धगुप्त—क्या ? इसमें कौन सा दोष देखते हो ?

आनन्दगुप्त—दोष कुछ नहीं। तिष्यरक्षिता पहले निरंकुश हुए थी; परन्तु अब उसका आचार-व्यवहार पहले जैसा नहीं रहेगा। चोट खाकर बुद्धि ठिकाने आ जाती है।

भवगुप्त—मुझे तो तिष्यरक्षिता पर विश्वास नहीं होता। प्रकृति बलवान् है। ऐसी लालसा की सीमा क्या ? यदि यह लालसा बढ़ जाय, तो अन्धेर हो जायगा।

बुद्धगुप्त—अन्धेर क्या ? तुम तो पगलों की सी बातें करते हो।

भवगुप्त—भाई ! मेरा तात्पर्य यह है कि कभी समय आने पर फिर भविष्य में भी तिष्यरक्षिता को राज्य करने की धुन सवार न हो जाय। युवराज तो कुमार कुणाल हैं। तब फिर वही परिस्थिति न उपस्थित हो जाय जो महाराज अशोक के राजसिंहासन पर बैठने के समय हुई थी।

आनन्दगुप्त—हाँ, तुम्हारी यह आशङ्का उचित है। परन्तु मै एक बात का स्मरण करा देना चाहता हूँ। तिष्यरक्षिता के सन्तान नही है। वह अब व्यर्थ कलह न करेगी।

बुद्धगुप्त—यदि कलह हुआ तो ऐसी स्थिति नही होगी जिसकी तुम सम्भावना करते हो। सम्राट् के साथ ही तिष्यरक्षिता की शक्ति है। सम्राट् के बिना वह कुछ नही कर सकेगी। प्रजा उसके पूर्वपद और आधुनिक दुश्चरित्र से पूर्णतया परिचित है। प्रजा धर्मविवर्धन कुणाल का साथ देगी। तक्षशिला प्रान्त के वीर योद्धाओ का सामना करना सहज न होगा।......

भवगुप्त—हुई न वही बात ! जब तुम स्वय सेना के वीर योद्धाओ की कल्पना करने लगे हो, तो मेरी बात क्यो काटते हो? सेना आदि का सामना करने मे क्या देश-हानि, जीव-हानि, धन-हानि न होगी?......

बुद्धगुप्त—मेरी बात तो तुमने अधूरी ही सुनी थी। मै आगे यह कहने को था कि युवराज की सेना आदि के भय तथा अन्य कारणो से तिष्यरक्षिता राज्य के लिए हाथ न उठायेगी।

भवगुप्त—अच्छा, भाई! झगड़ा करने से क्या लाभ? भविष्य इस बात को दिखला देगा कि कौन सच्चा है। मै अब जाता हूँ। (प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

आठवाँ दृश्य

स्थान—तिष्यरक्षिता का सजित गृह

समय—रात्रिकाल

[तिष्यरक्षिता के पास लेख-सामग्री रखी है पत्र हाथ में है]

तिष्यरक्षिता—कुणाल ! अधम कुणाल ! ! तुम्हारा जीवन मेरे हाथ में है। पद्मावती जन्म लेने के कारण तुम्हारे लिए अधिक आदरणीय है। ठीक है न? अब देखूँगा पद्मावती कैसे तुम्हारी रक्षा करती है। पद्मावती की पाषाणमूर्ति को भी अधिक आदर है, यह मैं सह नहीं सकती। तुम मुझसे घृणा करते हो ! तुम हो मेरे नयन के काँटे, पेट के शूल। जब सौत का पुत्र राजसिंहासन का अधिकारी हो जाय, तो और भी अनर्थ ! कुणाल ! तुमने कुणाल पक्षी के नेत्र सदृश अपने सुन्दर नेत्रों द्वारा महाराज को वश में कर रखा है। इसलिए तुम्हारे वही सुन्दर नेत्र मैं नष्ट करती हूँ। नेत्रों सहित तुम्हारा मुख देखकर दर्शक मुग्ध हो जाते हैं। तुम्हारा नेत्र-विहीन मुख कैसा होगा, कैसा होगा (सोचकर) मैं देख कर प्रसन्न होऊँगी, और दूसरे लोग देखकर मुख मोड़ लेंगे। नगर से निर्वासित होकर तू किसी हिंस्र पशु का ग्रास बन जायगा। मैं सम्राज्ञी राज्याधिकारिणी हाँ, अब बदला ले लूँगा। (उत्सुक नेत्रों से पत्र देखने लगती है) कुणाल

तो इस समय तक्षशिला मे है। महाराज को कुछ सूचना नही मिल सकती कि मैने वहाँ क्या राजाज्ञा भेजी है। जब सूचना मिलेगी, तब रो-धोकर शान्त हो जायँगे। मेरे ऊपर क्रोध करेगे; मै शान्त कर लूँगी। अब इस पत्र पर राज-चिह्न लगाकर चलता करती हूँ। (राजमुद्रा उठाकर कुछ सोचने लगती है) यदि महाराज की दन्तमुद्रा इस पत्र पर लगा दूँ तो आज्ञा-पालन मे तनिक भी विलम्ब न होगा, किसी को इसमे कोई सन्देह न होगा। दन्तमुद्रित पत्र पर किसी प्रकार का सन्देह नही हो सकता। इस समय महाराज सोते होगे, दन्तमुद्रा लगा लेना सहज होगा। जाती हूँ।

(पत्र लेकर छिपा लेती है, और महाराज के शयनगृह मे पहुँचती है। महाराज निद्रावस्था मे डरकर जाग पड़ते हैं)

अशोक—(सावेग) प्रिय पुत्र कुणाल ? कौन है तू.

तिष्यरक्षिता—(भयभीत होकर) महाराज! आप डर गये ? क्या हुआ ?

अशोक—तिष्ये! एक दुःस्वप्न देखा है।

तिष्यरक्षिता—(चौककर) क्या देखा ?

अशोक—(सभय) मैने देखा कि दो गिद्ध कुमार कुणाल के नेत्र निकालना चाहते है। इस स्वप्न से मै काँप उठा और जाग गया।

तिष्यरक्षिता—कुणाल तो सकुशल है। आप स्वप्न की कुछ चिन्ता न करें। कुमार की परछाई को भी छू लेना कठिन है, उसके नेत्रो का क्या कहना ?

(कुछ समय में महाराज फिर सो जाते हैं और पुन भयभीत होकर जाग उठते हैं)

अशोक—तिष्य ! मैंने स्वप्न अच्छा नहीं देखा।

तिष्यरक्षिता—कैसे ?

अशोक—मैंने देखा है कि कुमार, मेरा प्रिय कुणाल, इस नगर में आया है। बाल और नाखून बढ़े बढ़े हो रहे हैं। रूप कुरूप हो रहा है। मुख शान्ति फीकी पड़ गई। हाय ! नमो बुद्धाय।

तिष्यरक्षिता—(चिन्तित होकर) महाराज ! कुछ चिन्ता न करें। कुमार स्वस्थ हैं। विद्रोह शान्त कर शीघ्र सकुशल लौट आयेंगे। शान्त हूजिए, भय छोड़िए।

(कुछ समय के अनन्तर महाराज सो जाते हैं। तिष्यरक्षिता अवसर पाकर दन्तमुद्रा लगाकर चली जाती है)

तिष्यरक्षिता—(सोचकर) पत्र किसी ऐसे पुरुष के हाथ भेजना चाहिए जिससे यह रहस्य यहाँ खुलने न पाये नहीं तो महाराज के कान में यह रहस्य पहुँचते ही सब बिगड़ जायगा। अच्छा, आनन्दी से मन्त्रणा करती हूँ। वह ऐसा कोई पुरुष बता सकेगा।

(प्रस्थान)

[पट परिवर्तन

नवाँ दृश्य

स्थान—तक्षशिला में उपराज कुणाल के राजभवन का उद्यान

समय—प्रातःकाल

[मधुर वायु चल रही है। पक्षी भिन्न-भिन्न बोलियाँ बोल रहे हैं। किसी का गाना सुन पड़ता है]

बरसे रस, अलि! अमन्द।
होते दुख-द्वार चन्द॥ बरसे रस०॥
धार-धार सुमनहार
मोहे मन डार-डार,

[काञ्चनमाला का दो सखियों सहित प्रवेश। सखियाँ गा रही हैं]

विकसे अरविन्द-वृन्द
गूँजे पी मधु मिलिन्द॥ बरसे रस०॥
उड़ता चहुँ दिशि पराग,
गाते द्विज मधुर राग,
गन्धवाह अति सुगन्ध,
हरता चित चारु चन्द॥ बरसे रस०॥

हली सखी—अहह! प्रातःकाल की वायु कितनी सुहावनी है। पशु-पक्षी आनन्द में मगन हैं। पक्षियों का कलरव कितना हृदय-ग्राही है।

सरी सखी—(पुष्प तोड़कर) सखी! देखो, कैसी सुन्दर सुगन्ध है।

कमला—सखी ! क्या विमला ठीक कहती है ?

काञ्चनमाला—विमला कहती है कि सूर्योदय के समय कमल खिल जाते हैं। सो कमला इस समय खूब खिल रही है।

(तीनो हँसती हैं)

विमला—(हँसती हुई कमला का गाल छूकर) देखूँ, कमल कितना खिला है ?

कमला—विमला ! तू बहुत चञ्चल हो गई है।

(इतना कहकर विमला के गाल पर धीमे से चपत लगाती है)

विमला—(मुँह बनाकर) मै आज उपराजजी से तुम्हारी शिकायत करूँगी और न्याय माँगूँगी। वे बड़े न्यायप्रिय हैं। मै तुझे दण्ड दिलाऊँगी। (रूठकर मुँह मोड लेती है)

काञ्चनमाला—(मुसकराकर) बताओ, क्या दण्ड दिलाओगी।

विमला—कमला का व्याह करवा दूँगी।

(सब हँसती हैं। काञ्चनमाला की दाईं आँख फड़कती है और उसका हृदय चिन्तित हो जाता है)

विमला—रानीजी ! चिन्तित क्यों हो गई ?

काञ्चनमाला—मन तो प्रातःकाल से ही न जाने क्यों कुछ भयभीत था। फिर भी तुम्हारे साथ मनोविनोद को आ गई थी। अब दाईं आँख बार-बार फडक रही है। इससे अनिष्ट की आशङ्का होती है।

कमला—भगवान् कुशल करें। आपका अनिष्ट कौन कर सकता है? जो आपका अनिष्ट करना चाहेगा, उलटा उसी का अनिष्ट होगा। आप चिन्ता न करें।

विमला—हाँ, ठीक है। आपका अनिष्ट होना असम्भव है। आओ, पुष्प वाटिका में चलें।

(काञ्चनमाला की दाईं आँख फिर फड़कती है)

काञ्चनमाला—यह देखो, फिर आँख फड़की। हाय! आज क्या होनेवाला है। भगवान् कुशल करें। मैं लौटती हूँ।

कमला और विमला—अच्छा, चलो। भगवान् से अनिष्ट-निवारण के लिए प्रार्थना करें। (सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

दसवाँ दृश्य

स्थान—तक्षशिला मे परिषद्-गृह

[अमात्यजन आदि उपराज कुणाल की प्रतीक्षा कर रहे हैं।
प्रधान अमात्य के सामने कई पत्र रखे हैं]

प्रधान अमात्य—मन्त्रीजी ! उपराजजी के विचार योग्य कोई और पत्र तो नहीं है ?

मन्त्री—नहीं, अमात्यवर !

प्रधान अमात्य—(सब पत्र क्रमपूर्वक रखकर) उपराजजी को बहुत विलम्ब हो गया।

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल—(शिष्टाचार के पश्चात्) प्रधानजी ! पाटलिपुत्र से एक राजसन्देशवाहक आया है। आपके दर्शन करना चाहता है।

प्रधान अमात्य—ले आओ।

[द्वारपाल का प्रस्थान और राजसन्देशवाहक के साथ प्रवेश]

राजसन्देशवाहक—(उचित शिष्टाचार के पश्चात्) अमात्यश्रेष्ठ ! सम्राट्‌देव का यह एक आवश्यक सन्देश है। (पत्र देता है) उत्तर लाने के लिए आज्ञा की है।

प्रधान अमात्य—(पत्र लेकर पढता है) ओह ! यह क्या वज्र .. (अचेत होकर गिर पड़ता है)

(सेनापति पत्र लेकर पढता है। प्रधान अमात्य
उपचार द्वारा सचेत हो जाता है)

सेनापति—आश्चर्य है ! शान्त चित्त, दयानिधि तथा लोक हितव्रती सम्राट् का कुमार म द्वेष है, ता वे और किसा पर स्नेह-भाव क्या रखेंगे ?

[उपरान्त कुणाल का प्रवेश। यथोचित शिष्टाचार के अनन्तर सब, शोकाकुल होने से, आसन में असमर्थ हो जाते हैं]

कुणाल—(यह दशा देखकर) प्रधान अमात्य ! यह शोक क्यों ? (इधर उधर दृष्टि दौड़ाकर सेनापति के हाथ में राज-मुद्रित पत्र देखते हैं) क्या पाटलिपुत्र से कुछ अमङ्गल सूचक समाचार आया है?

(सेनापति पत्र देता है)

कुणाल—(पत्र पढ़कर हर्ष और विस्मय से) सज्जनों ! आप देवानां प्रिय प्रियदर्शी सम्राट अशोक का सन्देश सुनने के लिए उत्कण्ठित हो रहे होंगे। अतएव मैं स्वय ही यह मङ्गल सूचक पत्र सुनाता हूँ —

"देवानांप्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अशोक की ओर से प्रधान अमात्य को यह आवश्यक आदेश दिया जाता है कि उपरान्त कुणाल के दोनों नेत्र निकालकर इस नगर से तत्काल निर्वासित कर दिया जाय। कुणाल कुल कलङ्क है। इसने पिता से विद्रोह करके साम्राज्य को हस्तगत करने का षड्यन्त्र रचा है। अतएव न्यायप्रिय सम्राट् यह आज्ञा देते हैं कि पत्र पढ़ते ही उसे, बिना विलम्ब के निर्दिष्ट दण्ड दे दिया जाय।"

सभाजन—(पत्र सुनकर) उपरान्त सर्वथा निरपराध हैं।

प्रधान अमात्य—सम्राट्देव को भ्रम हुआ है।

कुणाल—सज्जनो ! सम्राट् दूरदर्शी हैं। वे भ्रम मे नही पड़ सकते। उनकी आज्ञा पर आलोचना करना अनुचित है।

प्रधान अमात्य—उपराज, कुमार ! यह पत्र सम्राट्देव का नही हो सकता। सम्राट् कोमल-हृदय है, पाषाण-हृदय नही। मुझे इस पत्र मे कपट की झलक दिखाई देती है।

कुणाल—(साश्चर्य) अमात्यवर ! राजनीतिज्ञ प्रत्येक पद पर सन्देह करते हैं। इस पत्र मे कपट कौन सा है ?

प्रधान अमात्य—उपराज ! पत्र को ध्यान से देखिए। उस पर तिथि नही है। सम्राट्देव के हस्ताक्षर भी नही हैं।

कुणाल—अमात्यश्रेष्ठ ! आप पत्र पर दन्तमुद्रा को देखिए। दन्तमुद्रा पिताजी के अतिरिक्त किसी और की हो नही सकती। यह कृत्रिम नही है।

प्रधान अमात्य—उपराज ! अभी ठहर जाइए। सम्राट् से इस विषय मे पूछ लेते हैं। सन्देह मिट जायगा।

सेनापति—हाँ, ठीक है। कुमार ! शीघ्रता करना ठीक नही।

कुणाल—प्रधान अमात्य ! आप व्यर्थ विलम्ब कर रहे हैं। यह पुत्र का सौभाग्य है कि वह पिता के लिए अपने प्राण अर्पण कर सके। (सेनापति की ओर देखकर) मुझे तो केवल नेत्रों द्वारा सेवा करनी है; इसमे विचार कैसा ? जल्दी कीजिए, चाण्डाल को बुलवाइए।

सेनापति—उपराज ! आज आपको कैसा मोह हो गया ? पत्र के छल-कपट पर आप सन्देह नही करते, वरञ्च इसको सत्य मानने

में दृढ़ विश्वास करते हैं। पितृ-भक्ति में अनुरक्त होकर अपने नेत्र गँवाते हैं, यद्यपि पिता इस पत्र से अनभिज्ञ हों क्या न हों। सम्राट् को एक पत्ते की हिंसा भी असह्य है। इसके लिए वे दोषी को दण्ड देते हैं। फिर क्या वे अपने पुत्र को, उपराज को, युवराज कुमार को, नेत्र हीन करके लोक-काज में असमर्थ करने की आज्ञा दे सकते हैं? नहीं, कभी नहीं। आप पर आरोपित अभियोग भी असत्य है और यह दण्ड भी सम्राट्त्व की प्रकृति के विरुद्ध है। मेरी सम्मति में तो यही उत्तम है कि आप इस पत्र की जाँच हो जाने तक प्रतीक्षा करें।

कुणाल—मैं समझता हूँ कि प्रतीक्षा करना राजाज्ञा का उल्लंघन करना पितृ आज्ञा की अवहेलना करना, पुत्र-कर्त्तव्य से मुँह मोड़ना है। सेनापतिजी! एक भिखारी जब भगवान के नाम पर कोई वस्तु माँगता है, तो दयालु लोग उसे वह वस्तु दे देते हैं। मैं भगवद्भक्त हूँ और पितृ-भक्त भी। जब पिताजी के नाम पर कोई मेरे नेत्र लेना चाहता है, तो मुझे इसमें कुछ आपत्ति नहीं। सज्जनो! मैं फिर कहता हूँ कि पत्र पर आप सम्राट् की दन्तमुद्रा देखिए। दन्तमुद्रा का महत्त्व आपसे छिपा नहीं है। आप जानते हैं कि यह दन्तमुद्रा इस पत्र के सत्य होने का प्रमाण है। अब विलम्ब मत कीजिए। (चाण्डाल को बुलाने की आज्ञा देते हैं)

सेनापति—युवराज! आप कैसी कायरता दिखा रहे हैं? अपने निर्मल यश पर कायरता का कलङ्क लगने देना एक राजकुमार के लिए

शोभा की बात नहीं। आपने कोई अपराध नहीं किया जिसका फल यह दण्ड समझकर हम अपने चित्त को सान्त्वना दे सकें। देखिए, उपराज! आवश्यकता पड़ने पर मेरे वीर सैनिक अपने प्राणों पर खेलकर आपकी सेवा करने के लिए उद्यत हैं।

कुणाल—(कुछ क्रोध से) सेनापतिजी! आप वृद्ध हैं। आपने चिरकाल तक राजसेवा की है। राजद्रोह करना आपके लिए उचित नहीं। मुझे आश्चर्य होता है कि सम्राट् का सेनापति सम्राट् द्वारा निर्धारित विद्रोही के साथ सहानुभूति प्रकट कर रहा है। आप जानते हैं कि पिता का पद कितना महत्त्व रखता है।

सेनापति—उपराज, कुमार! क्रोध मत कीजिए। मेरे वचनों पर शान्तिपूर्वक विचार कीजिए। मेरा अभिप्राय केवल इतना है कि इस आज्ञा की पुष्टि हो जाने तक आप प्रतीक्षा करें।

[चाण्डाल लोहे की गरम सलाइयाँ लेकर प्रवेश करता है।
सब ओर सन्नाटा छा जाता है]

अमात्यजन—(व्याकुल होकर) चाण्डाल! ठहर जा। तेरी आवश्यकता नहीं।

कुणाल—चाण्डाल! इधर आ। निर्भय होकर मेरी आज्ञा मान। मेरे दोनों नेत्रों में से तुच्छ कौड़ियाँ निकालकर बाहर फेंक दे।

चाण्डाल—(काँपकर) अरर रे! उपराजजी ने क्या मुझे अपने लिए बुला भेजा है? मैंने तो समझा था कि आज किसी अभागे ने उपराज का कोई घोर अपराध किया है। उपराज पर हाथ उठाऊँ? मुझसे यह कभी न होगा।

कुणाल—तुम राजाज्ञा का उल्लङ्घन करने का परिणाम जानते हो। मेरी आज्ञा मानो और मेरे नेत्रों को निकालकर सम्राट्‌देव की प्रसन्नता प्राप्त करो।

चाण्डाल—(व्याकुलता से) क्या स्वामी, सम्राट्‌देव को इसमें प्रसन्नता होगी? नहीं, नहीं। हा भगवन! मैं यह क्या सुन रहा हूँ! मुझसे राजाज्ञा का पालन न होगा, न होगा। जो दण्ड मिलेगा, सहन कर लूँगा।

कुणाल—चाण्डालराज! राजाज्ञा की अवहेलना करते हो। यह श्रेयस्कर नहीं। आज्ञापालन करो या पदत्याग।

चाण्डाल—हाँ, मुझे पदत्याग स्वीकार है। (शस्त्र फेंक देता है) युवराज की जय हो। (नमो बुद्धाय नमो बुद्धाय कहते हुए प्रस्थान)

प्रधान अमात्य—युवराज! मेरा कहा मानो। कुछ समय तक प्रतीक्षा करो। इस पत्र के विषय में सम्राट्‌देव से जाँच कर ली जाय, कपट अथवा वास्तविकता का निर्णय हो जाय।

सेनापति—हाँ, युवराज! मेरा भी यही अनुरोध है।

कुणाल—(सावेग) आप दोनों मुझे सन्मार्ग से विचलित करते हैं सत्पथ से कुपथ पर ले जाते हैं। मैं अब किसी की न सुनूँगा।

(शस्त्र लेकर कुणाल अपने नेत्र स्वयं निकाल देते हैं। सब ओर हाहाकार मच जाता है। सभा चिन्तित हो जाती है)

[पटपरिवर्तन

ग्यारहवाँ दृश्य

स्थान—तक्षशिला में काञ्चनमाला का राजभवन

[काञ्चनमाला को ढूँढ़ती हुई कमला का प्रवेश]

कमला—(साश्रुनेत्र होकर) हा सखी काञ्चनमाला ! हा सखी ! तुम्हें कहाँ ढूँढ़ूँ ? मिलूँ तो क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? हृदय दो टूक हुआ जाता है। ऐसी दुःखद सूचना से मेरी देह तड़प रही है। हाय ! हमारे भाग्य ने कैसा पलटा खाया ! यह सूचना कैसे दूँगी ! अथवा सखी से मिलूँ ही नहीं, जिससे मेरे मुख-द्वारा वे यह बुरी सूचना न सुनें। नहीं, यह ठीक नहीं। उपराज कुणाल शीघ्र ही उन्हें अपने साथ लेकर नगर से बाहर चले जायेंगे। अन्तिम दर्शन भी दुर्लभ हो जायँगे। साथ जाने की इच्छा होती है, परन्तु स्वीकृति न मिलेगी। हाँ, सखी को शीघ्र ढूँढ़ूँ। (ढूँढ़ती हुई एक स्थान पर काञ्चनमाला को पा जाती है)

काञ्चनमाला—सखी कमला ! यह व्याकुलता कैसी ? कहाँ गई थी ?

कमला—सखी ! आपके दर्शन शीघ्र करना चाहती थी। और ‥ ‥

काञ्चनमाला—दर्शन ! नहीं सखी ! कहो, कमल-वदन मुरझा क्यों रहा है। मुखकान्ति फीकी क्यों पड रही है ?

कमला—सखी ! कारण महान् है परन्तु कहा नहीं जाता।

काञ्चनमाला—(चिन्ता करके) शीघ्र कहो कमला ! जो कहना है शीघ्र कहो। मेरा मन पहले से ही व्याकुल हो रहा है।

कमला—(सशङ्क) मग्ना ! आपका सौभाग्य अटल रहे। एक महान अनिष्ट हुआ है।

काञ्चनमाला—मेरे सौभाग्य का अनिष्ट ! हाय ! प्राणनाथ ! आव हूँ। (मूर्च्छित हो जाती है)

[कमला सचेत करती है। उपरान्त कुणाल सेवक का आश्रय लिये प्रवेश करते हैं]

काञ्चनमाला—(सचेत होकर) मेरे प्राणाधार मकुशल हैं। (कि कुणाल को देखकर, आगे बढ़कर चरण स्पर्श करती है) आप आ गये ? कमला ! यह क्या ?

कुणाल—(हाथ से काञ्चनमाला को उठाकर) प्रिय !

काञ्चनमाला—(कुणाल की आँखों को देखकर) हाय ! यह क्या हो गया ? आँखों की शोभा फीकी क्या पड़ गई ? कहो नाथ ! शीघ्र कहो। (रोती है)

कुणाल—काञ्चन ! आँखों में जो कौड़ियाँ फँस रही थीं, उन्हें निकाल डाला है। धीरज धरो। तुम जानती हो कि यह लोक कर्म से बँधा रहा है और मनुष्य दुःख सहन करता है।

काञ्चनमाला—हाय ! नाथ ! इन नेत्रों का शत्रु कौन बन गया ? आपके लिए किसने जगत् अन्धकारमय कर दिया ?

कुणाल—(ढाढ़स देते हुए, अपने हाथों से काञ्चनमाला के आँसू पोंछकर) काञ्चन ! मेरी काञ्चन ! रोती क्या हो ? जो स्थूल अन्धे हैं या सूक्ष्म ? ये नयनों नेत्र श्रेष्ठ हैं या ज्ञान नेत्र ? पहले मैं इन चिकनाहटदार आँखों से देखता था,

अब ज्ञानमय नेत्र से देखूँगा। जो-जो पदार्थ, जो-जो स्थान, पहले अदृश्य थे, वे अब दृष्टिगोचर होने लगेंगे। इस अवस्था की इच्छा तो बडे-बडे योगी-तपस्वी करते हैं। मुझे तो बिना माँगे, बिना कहे, यह अवस्था मिल गई। यह समय प्रसन्नता का है, शोक का नही।

काञ्चनमाला—(शोकाकुल होकर) प्रातःकाल से मेरे हृदय को अज्ञात भय घेर रहा था। मै नहीं जानती थी कि आपका ही अनिष्ट होगा। हाय! इस दुःख का कारण कौन हुआ?

कुणाल—पूज्यपाद पिताजी का सन्देश-वाहक एक आवश्यक पत्र लेकर आया है जिसमे विद्रोही मानकर मुझे अन्धा किये जाने का दण्ड हुआ है। और.. .

काञ्चनमाला—यही दण्ड मुझे भी होगा।

कुणाल—नही, काञ्चन! और मुझे नगर-त्याग का भी आदेश हुआ है।

काञ्चनमाला—(साश्चय) हा! पिताजी का यह आदेश! नही, कभी नहीं। नाथ! आपको भ्रम हुआ है। यह कपटजाल माता तिष्यरक्षिता का रचा हुआ दिखता है।

कुणाल—सम्भव है। माता तिष्यरक्षिता मेरे ऊपर रुष्ट है। यदि वे मेरे नेत्र लेकर प्रसन्न हो जायँ, तो इसमे मुझे कुछ आपत्ति नही। यह शरीर नश्वर है। इससे लोकसेवा करना परम उचित है। यदि नाश होने से पहले इस शरीर द्वारा माता-पिता की सेवा हो सके तो और चाहिए क्या।

एक माता ने यह सारा शरीर बनाया दूसरी ने यदि केवल नेत्र ले लिये तो क्या हानि है? उठो, नगर त्याग करके मुझे वन का आश्रय लेने दो।

काञ्चनमाला—प्राणनाथ! तो मैं क्या करूँ? विधाता ने मेरे लिए क्या आज्ञा दी है?

कुणाल—तुम्हारे लिए कुछ आज्ञा नहीं। तुम जहाँ इच्छा हो, रहो।

काञ्चनमाला—यह बात असम्भव है। ज्योत्स्ना चन्द्रमा से पृथक् नहीं हो सकती। मैं आपके साथ चलूँगी। आपको मार्ग बताती चलूँगी। हाथ पकड़कर कुमार्ग से रक्षा करती रहूँगी।

कुणाल—तुम्हारी इच्छा।

काञ्चनमाला—प्राणाधार! स्त्री का कर्त्तव्य है कि पति की सेवा करे। पति यदि वन में रहें तो वही उसके लिए राजप्रासाद है। परन्तु मेरी एक अभिलाषा है।

कुणाल—शीघ्र कहो, क्या अभिलाषा है।

काञ्चनमाला—भगवान तथागत सम्बन्धी स्थानों की यात्रा की जाय।

कुणाल—ऐसी सदिच्छा में कौन बाधा डाल सकता है? यह भगवान् बुद्ध की कृपा है कि उन्होंने इस संसार के बन्धनों से मुक्त करके हमें अपनी ओर शान्त आकृष्ट कर लिया है। हाँ तो अब चलना चाहिए।

कमला—(हाथ जोड़कर) भगवान! मेरी एक विनती है।

काञ्चनमाला—कहो जो मेरी शक्ति में होगा, करूँगी।

कमला—मैं भी साथ जाने को तैयार हूँ।

काञ्चनमाला—सखी ! यह काम मेरी शक्ति से बाहर है। उपराज से निवेदन करो।

(कमला अश्रुपूर्ण नयनो से कुणाल के देखती है)

कुणाल—कमला ! यदि तुम साथ चलोगी तो और लोग भी साथ चलने का हठ करेंगे। जब इतने लोग हमारे साथ चल पड़ेंगे, तो महाराज फिर कुछ उपद्रव उठने की शङ्का करेंगे। इसलिए हमें अकेला ही जाने दो।

काञ्चनमाला—(कमला के गले लगकर) सखी ! मुझे तुम्हारा सखी-भाव सदा स्मरण रहेगा। विवश हूँ। अब विदा दो।

कुणाल—काञ्चन ! आओ, चलें।

(कमला कुणाल के पैर छूती है और काञ्चनमाला के गले लगकर रोती है)

कमला—सखी ! मुझे भूल मत जाना।

(दोनो रोती हैं, बाहर कोलाहल सुनाई देता है)

कुणाल—प्रिये ! शीघ्र चलो। बाहर प्रजाजन एकत्र हो रहे हैं। जाना कठिन हो जायगा।

काञ्चनमाला—चलिए। सखी कमला ! विमला का ध्यान रखना।

(कुणाल का हाथ पकड़कर चलने लगती है)

कुणाल—काञ्चन ! गुप्तद्वार से चलो। बाहर प्रजाजन जाने नहीं देंगे। (दोनो का प्रस्थान)

[पटाक्षेप

———

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—तिष्यरक्षिता का भवन

समय—सायङ्काल

[तिष्यरक्षिता का प्रवेश]

तिष्यरक्षिता—(हर्ष से पत्र पढ़कर) अहह ! अहह ! आज मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। कुणाल का गर्व मिट्टी में मिल गया। यदि मैं चाहती तो उसके प्राणों का अन्त कर देती। किन्तु नहीं, इससे वह सारे कष्टों से ही मुक्त हो जाता, मेरे अपमान का परिणाम भोग न सकता। ऐसे व्यक्ति के लिए जीवन से सहसा छूट जाना अच्छा है सही, किन्तु मैं उसे इसी पृथ्वी पर जीवित दशा में मृत्यु का परिचय कराना चाहती हूँ। अब देखूँगी वह युवराज, नहीं (हँसकर) उपराज, वन की कन्दराओं में कैसे विचरता है, हिंस्र पशुओं से अपनी रक्षा कैसे करता है। मैं चाहती हूँ कि वह कभी मेरी दृष्टि में आ जाय तो उसकी दीनावस्था देखकर तृप्त होऊँ।

[सहसा प्रवेश करके]

आनन्दी—आ गया, महारानी ! आ गया।

तिष्यरक्षिता—(सविस्मय) क्या ? आनन्दी ! क्या आ गया ?

आनन्दी—(धीरे से) तक्षशिला से पत्र।

तिष्यरक्षिता—फिर क्या हुआ ? पत्र से क्या ?

आनन्दी—(मुसकराकर) वाह ! मुझसे वनती हैं। मेरा पुत्र आपका आवश्यक पत्र लेकर तक्षशिला गया था। अब ...

तिष्यरक्षिता—हाँ, हाँ आनन्दी ! मै भूल गई थी। अधिक प्रसन्नता के कारण यह वात मेरे ध्यान से हट गई थी कि वह तेरा पुत्र है। मै समझी थी कि उस पत्र-वाहक ने यह वात वाहर फैला दी।

आनन्दी—(हँसकर) अब तो आपका मनोरथ पूरा हो गया, अतएव हम निर्धनो को भूलना उचित ही है।

तिष्यरक्षिता—(लज्जापूर्वक) वाह ! आनन्दी ! ऐसा विचार कभी मत कर। मै तुझे कभी नही भूल सकती। तूने मेरे सङ्ग सखी-भाव पूरा निभाया है।

आनन्दी—मै तुच्छ किस योग्य हूँ। मै तो हँसी से ऐसा कहती थी। अब आपके लिए एक कठिनाई और रह गई।

तिष्यरक्षिता—वह क्या ?

आनन्दी—जब महाराज को इस घटना की सूचना मिलेगी तब ?

तिष्यरक्षिता—उँह ! इसकी कुछ चिन्ता नही। महाराज मेरे वश मे हैं। मैं उन्हे ठीक कर लूँगी।

आनन्दी—महाराज वड़े न्याय-प्रिय हैं।

तिष्यरक्षिता—(हँसकर) न्याय की कुञ्जी मेरे हाथ है।

आनन्दी—और हम दोनों, मा-बेटे की, रक्षा आपके हाथ है।

तिष्यरक्षिता—(मुसकराकर) इसका कुछ भय मत कर।